सुधियों के अनुबंध

{कहानियाँ}

सुधियों के अनुबंध

{कहानियाँ}

©सविता मिश्रा 'अक्षजा'

©सविता मिश्रा 'अक्षजा'

ISBN: 979888951296-7

PUSTAK: SUDHIYON KE ANUBANDH

{ KAHANI SANGARH }

पुस्तक – सुधियों के अनुबंध
{ कहानी संग्रह }

लेखिका : ©सविता मिश्रा 'अक्षजा'

सम्पर्क – फ्लैट नंबर -३०२ , हिल हाउस
खंदारी अपार्टमेंट
खंदारी, आगरा (यूपी) २८२००२

मोबाइल नम्बर- ९४११४१८६२१

प्रथम संस्करण- जनवरी २०२२

द्वितीय संस्करण- जनवरी २०२3

मूल्य-: रु: 250 .00 {पेपर बैक}
प्रकाशक / वितरक
नोशन प्रेस

ब्रह्मलीन माँ

श्रीमती हीरा देवी की

पावन स्मृतियों को सादर समर्पित

प्रिय छोटे भाई

स्व. सुरेश तिवारी को

स्नेहांजलि स्वरूप समर्पित

आत्मकथ्य

दिल की बात, दिल से - कदाचित दिल तक पहुँचे

साहित्यिक लोग कहते हैं उनकी रचनाएँ उनके अपने बच्चे-सी होती हैं| किन्तु मेरा कहना है कि मेरी रचनाएँ कुम्हार के द्वारा गढ़े मिट्टी के बर्तन-सी हैं| नौ सिखिए कुम्हार की तरह कई कहानियों को शुरू-शुरू में मैंने लघुकथा रूप में ही गढ़ा था, फिर मैंने उसे कालान्तर में कहानी के रूप में ढाल दिया| यूँ कह सकते हैं कि इन कहानियों की नींव २०१४ में लघुकथा के रूप में ही पड़ गयी थी| 'सठिया गयी हो' नया लेखन ग्रुप में आज भी लघुकथा के रूप में पड़ी होगी| बाद में कई बार संशोधन करने के बाद वह बदल गये शीर्षक के साथ यहाँ तक पहुँची है| पहली कहानी शायद अप्रैल २०१४ में लिखी गयी 'फस्ट इम्प्रेशन है', इसमें भी न जाने कितनी बार शब्दों-वाक्यों के नट-बोल्ट कस-कस करके चुस्त-दुरुस्त करने का मैंने भरसक प्रयास किया है| इसी तरह कई कहानियाँ कई पड़ाव से होकर गुजरी हैं| पढ़ते-लिखते हुए समझ आया कि कहानी सपाटबयानी नहीं होती है तो फिर से कुम्हार की तरह ही शब्द डालते हुए ठोंक-पीट और गढ़कर मैंने कहानियों को सही करने की कोशिश की और किताब छपने तक मेरी ये कोशिश जारी रही| 'कक्षोन्नति', 'रेत का महल', 'मन का चोर', 'स्त्रीत्व मरता कब है', 'हरियाली का परचम' भी कहानियाँ लघुकथा के रूप में कलमबद्ध हुई थीं, फिर प्रयासरत रहकर मैंने इन्हें कहानी के साँचे में ढालने का सफल-असफल प्रयास किया| कई बार इन सभी कहानियों को कुम्हार की तरह कहानी के उदेश्य को सहेजते हुए वाक्य गढ़ती रही थी, जब

तक की वर्तमान स्वरूप में नहीं आ गयीं| खुद के गढ़े बर्तन जैसे कुम्हार को भाते हैं, वैसे ही मेरी हर कहानी मेरे दिल के करीब है|

ज्यादातर लेखकों की तरह मैंने भी लेखन का आरम्भ कविताओं से ही किया था| 'आपके काव्य में कविता का अभाव' और 'आपकी कविता गद्य के ज्यादा करीब है' वाली टिप्पणी पढ़कर लगा कुछ और लिखा जाय| किन्तु ईमानदारी से कहूँ तो किसी भी विद्या को किन्हीं के कहने भर से लिखना नहीं छोड़ा मैंने| बल्कि और भी विधाओं में अपनी लेखनी आजमाई| कालान्तर में लघुकथा लेखन की ओर उन्मुख हुई| 'सविता मिश्रा को लघुकथा नहीं, कहानी लिखनी चाहिए' सुनकर कहानी की राह चल पड़ी| इस वाकये से देवदास फिल्म का मशहूर डॉयलाग याद हो आता है| यदि उस डॉयलाग को अपने शब्दों में कहूँ तो "कवियों ने कहा काव्य लिखना छोड़ो, लघुकथाकारों ने कहा लघुकथा लिखना छोड़ो, ये तुम्हारे बस की बात नहीं| अब कहानीकारों के कहने की बारी है|" इस पुस्तक के जरिये मैं उन्हें यह कहने का सुनहरा मौका सहर्ष दे रही हूँ| यदि किसी कहानी को पढ़कर कुछ भी कहना चाहे तो कृपया मुखर होकर कहिएगा| और मेरा मार्ग-दर्शन करते हुए कहानीकार बनने की दिशा में मेरा मार्ग-प्रशस्त करने की कृपा कीजियेगा| बड़ी उम्मीद के साथ आप सबके हाथों में लघुकथा संग्रह 'रोशनी के अंकुर' के बाद अब अपना पहला कहानी संग्रह सौंप रही हूँ| अब इस कहानी संग्रह के माननीय पाठक तय करेंगे मेरी कहानियों का भविष्य और साथ में एक कहानीकार का भी|

आसपास बिखरे विषयों से छानकर निकाली गई इन कहानियों की भी अपनी कई-कई कहानियाँ हैं| कुछ कहानियों को तो लिखने में मेरी कलम सरपट दौड़ी, कुछ ने हमें बहुत दौड़ाया| कहीं से भी रिजेक्ट होने पर कभी मेहनत भी करवाई| अभी अक्टूबर २०२१ में भी पांडुलिपि अस्वीकृत होने और श्रेष्ठतर कहानीकार श्री विवेक मिश्र की हीला-हवाली (मौन आवृत्ति) के कारण मुझे मेरी कहानियों को फिर से पढ़कर बदलाव

करने का ख्याल आया, इसके लिए हम शुक्रगुजार हैं उनके, उनके न बोलने पर हमें लगा कोई तो कमी-सी है| 'रेत का महल', 'सुधियों के अनुबंध', 'पिंजरे की चिड़िया', 'वह लौट आया', 'जिंदगी के रंग' कहानी को छोड़कर ज्यादातर कहानियों ने पुनः उड़ान भरीं| अब उनकी उड़ान कितनी दुरुस्त हुई है, यह आप पाठक-गण ही बता पाएँगे| मैंने अपनी तरफ से अथक प्रयास किया है| सुधार करके वर्तमान रूप में ढालना भी आसान काम नहीं था, हाँ पहली बार कहानी को कागज पर उतारना मेरे लिए अवश्य ही बेहद आसान काम है| मैं मानती हूँ कि मेरी कोई साहित्यिक पृष्ठभूमि नहीं है| भावनाओं का गहरा समुद्र दिल में उमड़-घुमड़ रहा होता है, उसे ही शब्दों की पतवार से बाँधने का प्रयास भर करती हूँ|

इस संग्रह में सम्मिलित कहानियाँ कोई चमत्कार नहीं करती हैं, बल्कि संवेदनाओं की डोर पर चलती हुई आगे बढ़ती हैं| आप यूँ कह सकते हैं कि इन कहानियों को मैंने नहीं लिखा बल्कि मेरी लेखनी ने अपने पात्रों के इशारे पर चलते हुए खुद लिखवा लिया| कहानियों में मेरी पीड़ा, शंकाए वाक्यों के जरिए छलक गयी हैं, यदि किसी के हृदय को कुरेद पाती हैं, तो मुझ जैसे नवोदित का अहोभाग्य होगा| 'कई कहानियाँ पुरस्कृत भी हुई हैं, मैं यहाँ उनका नाम अलग से गिनाकर उन्हें महत्त्वपूर्ण नहीं बनाना चाहती हूँ, मेरे लिए मेरी सभी कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं| आप पाठकों की निगाहों से अब मुझे मेरी कहानियों को देखना है| मेरे दिल से निकली भावनाएँ आपके दिल-दिमाग के कपाट को कितना खटका पाती हैं, यह तो मैं नहीं जानती हूँ| बस मुझे इतना भर पता है कि मेरी भावनाएँ लोगों के सवेंदनशील मन को सहलाती तो अवश्य हैं| लोगों के फोन और सोशल मीडिया पर की गयी प्रतिक्रियाएँ कुछ ऐसा ही आभास कराती रही हैं|

मैं वरिष्ठ व्यंग्यकार श्रवणकुमार उर्मलिया भैया का सादर धन्यवाद देना चाहती हूँ, क्योंकि चार साल पहले उन्होंने ही कहानियों को पढ़कर सुझाव देते हुए उनकी वर्तनी की गलतियों को सुधारने में मेरी मदद की थी| ये मेरी

गलती है कि उसे किताब के रूप में न ले आकर मैंने चार साल का लम्बा इन्तजार किया| बहुत-बहुत आभार बड़े भैया आपका, क्योंकि आपके द्वारा कहानियों को पढ़ने और प्रोत्साहित करने के बाद ही मुझे लगा कि मैं कहानी भी लिख सकती हूँ| मैं हृदयतल से आभारी हूँ आगरा की वरिष्ठ साहित्यकार डॉक्टर सुषमा सिंह जी(आगरा) और वरिष्ठ साहित्यकार श्री नरेश कुमार 'उदास' जी ने (जम्मू कश्मीर से) का, जिन्होंने मेरी कहानियों को सुना/पढ़ा और हमें उन्हें सुधारने के लिए सुझाव दिए|

मैं मेरे बच्चों का भी आभार व्यक्त करती हूँ| खासकर बड़े बेटे अमित मिश्रा की आभारी हूँ कि रात हो या दिन जब कभी मैंने कहानी सुनने को कहा, वह उपस्थित रहा और उसने यथा सम्भव सुझाव भी दिया| मैं अपने पतिदेव की भी शुक्रगुजार हूँ कि वे समाज को सही राह पर मोड़ने में व्यस्त रहे, जिसके कारण मुझे लिखने-पढ़ने का भरपूर समय मिला| फेसबुक की तो मैं शुरू से आभारी हूँ और आभारी हूँ सोशल मीडिया पर उपस्थित अपने भाई-बहनों और वरिष्ठ जनों की| दिल से आभार आप सभी मार्गदर्शन करने वालीं विशेष विभूतियों का| आप सबके सहयोग से ही अपनी लेखनी है| साथ ही मैं प्रकाशक का भी सहृदय धन्यवाद देती हूँ, क्योंकि बिन प्रकाशन के भी लेखनी का धरातल पर उतरना सम्भव नहीं है| भले ही मैं इस पुस्तक का सेल्फ प्रकाशन कर रही हूँ|

इन चौदह कहानियों का संग्रह अब आप पाठकों को सौंपते हुए मुझे बेहद खुशी है| आदरणीय सहृदय पाठकों से कहना बस इतना है कि आप सब दिल से पढ़ते हुए कहानियों में जो भी कमियाँ दिखें तो उसे हमें अवश्य बताइए| और लगे कि मेरी कहानियाँ आपके स्नेह की हकदार हैं तो उस स्नेह को भी शब्दों में बह जाने दीजिए| आशा है 'सुधियों के अनुबंध' संग्रह की कहानियाँ अपने कहानी तत्व को लेकर खरी उतरेंगी| और इसकी भी पूरी उम्मीद है कि समालोचकों को भी निराश नहीं करेंगी|

अंत नहीं बल्कि प्रथम श्रद्धा पूर्वक मैं माँ सरस्वती को सहृदय धन्यवाद प्रेषित करती हूँ कि उन्होंने बिन भक्ति के ही मुझमें लिखने की

शक्ति भर दी है| उनकी ही कृपा से तो सब चल रहा है| साथ ही आप सब पाठकों के स्नेह की आकांक्षी लेखिका-

सादर आभार सहित

सविता मिश्रा 'अक्षजा'

अनुक्रम

१- कुहासा छँट गया

२- आत्मशक्ति

३- तुम ठीक कहते थे

४- उसके जाने का दुःख

५- रेत का महल

६- कक्षोन्नति

७- स्त्रीत्व मरता कब है!

८- प्रश्न उठते रहे

९- वह लौट आया

१०- पिंजरे की चिड़िया

११- पीढ़ियों का अंतर

१२- फस्ट इम्प्रेशन

१३- मन का डर

१४- सुधियों के अनुबंध

कुहासा छँट गया

शहर के बीचो-बीच खूब बड़ा पार्क बना हुआ था| पार्क में तरह-तरह के फूल-पौधे लगाए गए थे| वहाँ पर गुलाब, बेला, हरसिंगार, चम्पा और रात-रानी के पौधे बहुतायत में थे| उनकी भीनी-भीनी महक चित्त को बड़ा सुकून देती थी| इमली-नीम के पेड़ की खुशबू तो बरसात में बड़ी सुहावन लगती थी| पार्क के बीचों-बीच में नौका-विहार के लिए समुचित जलाशय की व्यवस्था भी की गयी थी| सारस-बत्तखें भी झुण्ड में यहाँ-वहाँ देखे जा सकते थे| सुबह हो या शाम का समय, पार्क बड़ा ही मनोरम लगता था| आसपास की सोसाइटी से ही नहीं बल्कि शहर के छोर में रहने वाले लोग भी पार्क की सुन्दरता के कारण खिंचे चले आते थे, आसपास रहने वालों के लिए तो वह पार्क आकर्षण का केंद्र था ही|

कई फलदार पेड़ भी थे जिनके नीचे बड़े-बड़े चबूतरे बने थे| प्रतिदिन ही बड़े-बुजुर्ग उन्हीं चबूतरों पर बैठकर अपनी बैठकी जमाते थे| कई बुजुर्ग बरगद के पेड़ के नीचे योगाभ्यास करते भी दिख जाते थे| रामप्रसाद को तो सबसे प्रिय था पार्क में खड़े होकर, दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा ठठाकर हँसने वाला अभ्यास| जीवन का सारा दर्द भूलकर चंद पल वह दिल खोलकर हँसते थे| यह बात और थी कि कभी-कभी उनके आँखों की कोर पनीली हो जाती थी| रामप्रसाद के साथ कभी-कभार उनकी पत्नी संगीता भी आ जाती थीं| दोनों बेटे विदेश में जा बसे थे| अब इस शहर में रामप्रसाद और संगीता ही एक दूजे के सुख-दुःख के सच्चे साथी थे|

रामप्रसाद को इस पार्क में आकर बैठना इतना अधिक भाता था कि दो-चार घंटे वह पार्क में ही बिता देते थे| पार्क का एक-आध चक्कर लगाकर हल्का-फुल्का व्यायाम करते हुए घंटे भर बिताते| फिर चबूतरे पर बैठकर पार्क का अवलोकन करते हुए भविष्य के फुग्गे फोड़ते रहते थे| संगीता को पार्क में टहलने से अधिक अड़ोस-पड़ोस के घरों में जाकर बैठकी करना पसंद था| आज रामप्रसाद जिद करके पार्क में संगीता को भी साथ लेकर आये थे| दोनों किनारे पड़ी बेंच पर बैठ गपशप करने लग गए थे|

वहाँ पार्क में कई नए जोड़ों को हाथ में हाथ डाले टहलते देख रामप्रसाद को न जाने क्या सूझी! अपनी जीवन संगिनी के हाथों को अपने हाथ में लेकर बोले, "याद है तुम्हें, पहली बार तुम्हारे हाथों को कब मैंने अपने हाथ में इस प्रकार से लिया था!" संगीता सुनकर बस मुस्करा के रह गयी| उसका सारा ध्यान तो पार्क में एक तीन साल के बच्चे के साथ टहलती हुई गर्भवती युवती की ओर था| उसे देखकर उसके मन में अजीब-अजीब ख्याल आवा-जाही कर रहे थे|

वह सोचती रही थी कि 'यह युवती तो 'पूरे दिन' से है, यहाँ अकेले कैसे टहल रही है? वह भी तीन साल के नन्हे बच्चे के साथ! जरुर पति ने छोड़ दिया होगा| तभी तो इस हालत में भी यह यहाँ अकेले टहल रही है| दूसरे बच्चे को लेकर लड़ाई हुई होगी दोनों के बीच| नौकरी करने वाली लड़कियाँ परिवार बढ़ाना कहाँ चाहती हैं| सब कुछ अपने मन की करना चाहती हैं| हर बात में तो पुरुषों को जवाब देने लगती हैं| नहीं सहा होगा इसके मर्द ने| इस हाल में छोड़कर जाने का मतलब ही है कि युवती लड़ाकू किस्म की है, पति की एक बात भी सहती नहीं होगी| यदि इसका पति साथ रहता होता तो उन जोड़ों की तरह वह इसके साथ होता| अपने बेटे को गोद में लिए साथ चलता हुआ हँसी की फुलझड़ियाँ छोड़ता

चलता|' सोचते हुए उसके मन ने अंगड़ाई ली| अंत सोचकर वह अपनी अतीत की परिस्तिथि यादकर पुलकित हो उठी|

"तुम्हें याद आ गया न, तभी तुम मुस्करा रही हो| किंतु कुछ बोलो भी, मैं भी तो सुनूँ कि तुम्हें कितना याद है!" रामप्रसाद अपनी ही धुन में थे|

'ये आज की जनरेशन सास-ससुर को तो बोझ मानती है, इसने भेज दिया होगा उन्हें वृद्धाश्रम| न जाने क्या हो गया है आज के लोगों को|' बड़बड़ाने हुए रामप्रसाद की हथेलियों से उसने अपना हाथ झटककर निकाल लिया|

"क्या बड़बड़ा रही हो?" हाथ झटकने से वह अकबका गए थे|

"हुँह, कुछ नहीं|"

लेकिन चंद मिनट बाद ही न चाहते हुए उसका दिमाग पुनः चलायमान हो गया| 'इसकी सास होती तो इसको ऐसी हालत में अकेले टहलने भेजती क्या? खुद साथ रहकर बच्चे के साथ बहू का भी इस अवस्था में ध्यान रखती| अवश्य ही यह खूब नकचढ़ी बहू होगी| तभी तो देखो अब कोई नहीं है इसके साथ|

यह भी हो सकता है कि यह पति के साथ अलग फ्लैट में रहती हो| आजकल तो बहुएँ ससुराल आते ही अलग एक नया घरौंदा बसा लेती हैं| पति का परिवार इन्हें फूटी आँख नहीं सुहाता| हो सकता है लड़ बैठी हो अपनी सास-ननद से| आज की लड़कियाँ सहना-सुनना कहाँ सीखी हैं| कुछ वर्षो में लड़कियों की तो सहनशक्ति और लज्जा जैसे मौलिक गुण संरक्षण गृह में दर्शनाथ रखे ही मिला करेगें| देखो तो, शुरुआत हो ही गयी है|'

'आजकल लड़कियाँ भी कमाऊँ हो गयी हैं मर्दों की तरह, तो उसकी ठसक तो इनमें रहेगी ही| फिर आखिर क्योंकर सहें किसी की| एक हमारा जमाना था कितना कुछ सहते थे, उफ तक न करते थे कभी| तभी तो आज तक एक

साथ हैं हम दोनों| आखिर धीमी आँच पर ही तो खीर स्वादिष्ट पकती है न! आज की पीढ़ी तो जिंदगी को भी इंस्टेंट नूडल्स-सी समझ बैठी है|’

ठंडी हवा का झोंका आया तो फूलों की महक से मुग्ध-सी हो गई संगीता| हवा में फैली फूलों की ताजगी उसके दिमाग को भी तरो-ताजा कर गयी थी| आँखों को भी हवा में मौजूद शीतलता ने शीतल कर दिया| कुछ देर वह आँख बंद करे चेहरा ऊपर को उठाए सुगंध का पान करती रही|

एकबारगी वह खुद से खुद को ही झकझोरती हुई बोली, 'अरे नहीं-नहीं मैं गलत क्यों सोच रही हूँ| जब ये ऑफिस से देर से आते थे तब मैं भी तो पार्क में अकेले ही टहलती थी| रिंकू मेरे पेट में था| इसकी तरह ही मेरे दिन पूरे हो चुके थे| डॉक्टर की सख्त हिदायत थी कि प्रतिदिन हिम्मत भर टहला करिए| पार्क में ही तो मेरा दर्द शुरू हो गया था| उस समय किसी ऐसी ही बेंच पर बैठी किसी बुजुर्ग महिला ने मेरी मदद की थी| इन्हें भी उन्होंने ही तो फोन करके बुलाया था मुझसे इनके ऑफिस का नम्बर लेकर| अपना वह दिन इतनी जल्दी भूल गयी मैं? सच कहते हैं ये, मैं 'सठिया गई हूँ'|’ सोचकर वह मन ही मन मुस्करा उठी|

सोच से बाहर आकर उसकी आँखों ने युवती की खोज ली तो देखा कि वह बरगद के पेड़ के पास से होकर उसकी ही ओर चक्कर लगाते हुए आ रही थी| और पास में ही बैठे रामप्रसाद अनुलोम-विलोम करने में व्यस्त थे|

‘शादी के एक साल के अंदर ही इनकी नौकरी शहर से बाहर लग गयी थी| सास ने जबरदस्ती मुझे भी इनके साथ भेज दिया था| यह कहकर कि मेरे बबुआ को भोजन कौन बनाकर देगा| थक-हारकर आएगा तो क्या भोजन खुद बनाएगा? इनके बहुत मना करने के बावजूद 'बहू तैयार हो जा बबुआ संग जाने को' उन्होंने सख्ती से आदेश पारित कर दिया था|’

पुराने दिनों की याद आते ही फिर चेहरे पर मुस्कान अनायास ही आ गयी थी|

उसे हँसता हुआ देख राम प्रसाद बोले, “मन ही मन क्या सोचकर खिलखिला रही हो| क्या हाथ में हाथ लेने की तिथि याद आ गयी क्या!” संगीता के अनसुना कर देने पर रामप्रसाद बुदबुदाए, “एई बुढ़िया! कहाँ खोयी है?” पर बुढ़िया तो पास होकर भी पास कहाँ थी| वह तो दूर कछुआ गति से टहलती युवती में खुद को देखती हुई अपने खट्टे-मीट्ठे दिनों में खोई हुई थी|

युवती अभी-अभी धीरे-धीरे चक्कर लगाती हुई संगीता के सामने से होकर आगे बढ़ गयी थी| थोड़ी ही दूरी पर उसका बेटा तिपहिए साईकिल से उसके पीछे-पीछे चलता चल रहा था| अचानक किसी पत्थर से टकरा कर तिपहिये से गिर गया वह| गिरते ही तेज स्वर में रोने लगा| रोने का स्वर जैसे ही संगीता के कानों में पड़ा वह वर्तमान में वापस लौट आई| दौड़कर बच्चे को उठाकर चुप कराने लगी| युवती जल्दी दौड़ सकती नहीं थी| वह जब तक पास आई उसका बेटा संगीता की गोद में हँसता हुआ बैठा था| संगीता ने लाड़ लड़ाकर बच्चे को बहला लिया था| युवती नजदीक पहुँचकर ‘धन्यवाद आंटी’ कह मुस्करा दी|

जब तक एक दूजे से जान-पहचान कर रहे थे तभी युवती संध्या का पति राकेश आ गया| हँसते हुए बोला- "डार्लिंग माफ कर दो, आज देर हो गयी| वह बात ऐसी थी कि बॉस ने कुछ काम दे दिया था| और सख्त हिदायत दी कि इसको निपटाए बिना घर नहीं जाना है| क्या कर सकता था? तुम तो जानती ही हो, बॉस की तो सुननी ही पड़ती है|”

संगीता ने कनखियों से स्त्री को देखा| उसकी आँखें मुस्करा रही थीं| वह चबूतरे पर चिंटू को बैठाकर, उसके साथ खेल रही थीं, लेकिन आँख-कान युवती की तरफ घूमे हुए सतर्क अवस्था में थे|

“घर पहुँचा तो माँ चिल्ला पड़ी कि ‘बहू अकेले गयी है पार्क में! जा, जाकर उसे ले आ| मेरे तो घुटने जकड़े थे, अतः साथ गयी नहीं| जा, जल्दी भागकर

जा'|" युवती के पति द्वारा दी गयी सफाई संगीता के कानों को भी साफ करती जा रही थी| संध्या मुस्कराकर बोली, "कोई बात नहीं स्वीटहार्ट|"

चिंटू अब भी संगीता के पास बैठा था| संध्या पति के साथ उधर ही जाकर बोली, "इनसे मिलो, ये संगीता आंटी हैं, इन्होंने चिंटू को सम्भाला, वरना शायद वह आज चोटिल हो जाता|" राकेश ने 'नमस्ते आंटी' कहकर अपने बेटे चिंटू को अपनी गोद में ले लिया, फिर संध्या का हाथ पकड़कर बतियाते हुए अपने घर की ओर चल दिया| संगीता की आँखों ने तब तक उस युवती का पीछा किया जब तक कानों में युगल के खिलखिलाने की घंटियाँ बजती रहीं| सूरज सिर पर चढ़ आया था| संगीता के चारों ओर घिर आया कुहासा धीरे-धीरे छँटने लगा था|

--०--

आत्मशक्ति

“...मम्मा, मम्मा! निक्की स्कूल से आते ही पुकारती हुई रसोईघर में पहुँची थी| माँ के गले से लिपटकर ...ऊँ हूँ हुँ ऊँ हूँ करके रोने लगी|

“क्यों रो जा रही, क्या बात है बिटिया? अरे बताओ तो...!” माँ ने सशंकित होकर पूछा|

निक्की बिलखते हुए बोली- “मम्मा, आज फिर उस लफंगे ने मुझको छेड़ा|”

“कौन, कहाँ…? ये सब बातें तूने मुझसे पहले क्यों नहीं बताई? चुप हो जा अब और चल मेरे साथ, अभी बताता हूँ उस हरामखोर को!” बहन की बात सुनते ही बड़ा भाई रोहित आगबबूला हो गया|

“सुन रोहित…, अरे सुन तो बेटा, रुक जा बेटा...| मारपीट से कुछ हासिल होगा क्या?” घर के बाहर निकलने से पहले ही दरवाजे पर रोहित को पकड़कर माँ समझाने लगी|

“तो मैं क्या करूँ, तुम्हीं बताओ मम्मी? वह बदमाश रोज-रोज छेड़ रहा है निक्की को, चार दोस्त मिलकर एक बार पीट आते हैं साले को, फिर नजर उठाने की भी कभी हिम्मत नहीं करेगा|”

रोहित को पानी का गिलास पकड़ाकर माँ संयमित रहने का पाठ पढ़ाने लगी| लेकिन युवावस्था का क्रोध पानी के घूँट से ठंडा होने वाला कहाँ था| वह फिर से बिफरा, “आदर्श, तू क्या चुपचाप बैठा है, चल मेरे साथ तू भी| तुझे क्रोध नहीं आ रहा है यह सब सुनकर ?”

“भैया, क्रोध से आग भड़केगी, शांत तो नहीं होगी न| तुम आज चार लोग मिलकर उसे पीटोगे, कल वो आठ मिलकर हम दोनों को पीटेंगे| ऊपर से दीदी को भी चैन से जीने नहीं देंगे| चलो न, पुलिस में रिपोर्ट करवा आते हैं|”

“नहीं, नहीं, इससे बदनामी होगी| लोग निक्की को ही बुरा-भला कहेंगे| आगे चलकर इसकी शादी में दिक्कत आयेगी| शांत बैठो दोनों भाई| कल पापा आयेंगे, फिर देखते हैं कि वे क्या कहते हैं इस मामले में|”

“पापा आयेंगे, फिर देखेंगे| हुँह...! कुछ भी हो बस हाथ पर हाथ धरे पापा के आने का वेट करो| आए पापा?” कल का दबा क्रोध जैसे उबलकर पुनः बाहर आ गया था|

“कुछ काम आ गया होगा| आज परमिशन लेकर, आने वाले थे!”

“मम्मी, तुम कब तक दिवा स्वप्न देखती रहोगी| मौके से उन्हें अपनी नौकरी से कब फुर्सत मिली! याद करके बताइए तो?” थोड़ी देर शांत रहकर जैसे अपने गुस्से को पीना चाहता था, किन्तु बहन की इज्जत का सवाल था| आखिर हर बार की तरह इस बार भी वह कैसे चुप लगा जाता| तिलमिलाहट में फिर से बोला, “साल भर से आज आऊँगा, कल आऊँगा कहके नहीं आते हैं| कोई न कोई काम निकल आने का बहाना बना देते हैं| इन्तजार करवा-करवाकर उन्होंने आपको संतोष बनाए रखने में प्रवीण कर दिया है| आपको अच्छी तरह पता है कि उनको अपना काम सबसे अधिक प्यारा है| आपसे क्या, अपने बच्चों से भी अधिक|”

बेटा अपनी कुंठा उगलकर जा चुका था, किन्तु उसके द्वारा कही गयी हर बात दिमाग में भूचाल मचाए थीं| वह बुदबुदाई, ‘कुछ गलत तो नहीं कह रहा है रोहित| आखिर कुछ दिनों पहले उसने आशीष से छुट्टी लेने की जिद की थी तो उन्होंने कटु शब्दों में उत्तर दिया था, ‘तुम तो

चाहती हो कि मैं नौकरी छोड़कर तुम्हारी गुलामी करूँ’| ‘मैं ऐसा कब चाहती हूँ?’ कहते ही उन्होंने तपाक से कहा था, ‘नहीं चाहती तुम, तो फिर छुट्टी लेकर आने का हठ क्यों करती हो| जानती हो, छुट्टी माँगते ही अधिकारी व्यंग्यात्मक रूप से कहते हैं कि ‘जब-तब छुट्टी ही चाहिए तो फिर इस नौकरी में क्यों हो, छोड़कर घर बैठो’| तुम बताओ कि यदि नौकरी छोड़कर घर बैठ जाऊँगा तो खाओगी क्या, अपने बच्चों को क्या खिलाओगी! खुले हाथ से जो खर्च चल रहा है, वो कैसे चलेगा’? कॉल कटते ही उसने मोबाइल को उस दिन स्विच ऑफ करना ही उचित समझा था|’

हफ्ते भर बाद ही बिना किसी सूचना के आशीष आ गये थे| उन्हें अचानक देखकर सबको जैसे साँप सूँघ गया| सुषमा ने चाय पकड़ाते हुए पूछा, "छुट्टी मिल गयी क्या, हमें तो बताया नहीं था आपने?”

“नहीं, छुट्टी मिलना इतना आसान थोड़ी है| त्योहारों का सीजन भी चल रहा है| बस एक दिन की परमिशन लेकर आया हूँ|”

दोपहर में पिता की उपस्थिति में खाना-पीना शांति से निपट गया| खाते समय कोई भी एक शब्द भी नहीं बोला था| सभी को यूँ चुपचाप खाना खाकर उठते देख आशीष ही बोल पड़े, “अरे, तुम सब बहुत शांत बैठे हो! क्या बात है, कोई अनहोनी हो गयी है क्या?”

माँ-बेटी डायनिंग-टेबल से बर्तन समेट रसोई की ओर जाने लगीं| तभी रोहित की तरफ तिरछी निगाह डालते हुए आशीष का कड़क स्वर गूँजा-

“क्यों रोहित, हमेशा की तरह कहीं से लड़कर तो नहीं आए हो?”

रोहित के अंदर सुलगती आग जैसे भड़क उठी, “नहीं पापा, लड़कर तो नहीं आया| परन्तु लड़ना चाहता था| बस मन मसोसकर रह गया हूँ| मम्मी और इस आदर्श ने मुझे कुछ करने नहीं दिया|”

“क्या हो गया ऐसा...?”

“मम्मी ने रोक लिया| आपके आने का इन्तजार था| फोन पर बताने को कहा था तो कहने लगीं कि आप आ जाएँगे तो सामने बैठकर यथास्थिति से अवगत कराएँगी| अब आप आ गये हैं, आप ही बताइए, कोई समाधान निकालिए! निक्की को महीने भर से एक लड़का परेशान कर रहा है| हमें क्या करना चाहिए? आप कहिए तो कल ही दस-पाँच लात-घूसे मारकर उसे ठीक कर आऊँ|” गुस्से में भरा रोहित मम्मी के रसोई से आने तक का सब्र नहीं रख पाया|

“निक्की, निक्की..!” तमतमाये हुए आशीष ने बेटी को पुकारा|

“बुलाओ उसे, कहाँ गयी?” क्रोध से पत्नी की ओर देखते हुए चीखे|

निक्की डर से थरथर काँपती हुई सामने आकर खड़ी हो गयी| भय ने उसके शरीर को पूरी तरह से जकड़ लिया था| आँखों की पुतलियों पर पलकों ने घेरा डाल दिया था| होंठ रह-रहकर फड़फड़ाते फिर एक दूसरे से चिपक के रह जाते थे| स्वर भिंचे हुए होंठों से बाहर निकल नहीं पा रहा था, शब्द अंदर ही अंदर दम तोड़ दे रहे थे|

“कौन है वह लड़का, क्या तुम्हारा दोस्त है, बोलती क्यों नहीं?” बादल जैसे गरजे थे|

पिता की कड़कती वाणी से वह सहमकर बोली, “जी, जी पापा| पर मेरा...”

“हम तुम्हें कॉलेज में पढ़ने भेजते हैं, याकि ऐसे सड़क-छाप लड़कों से दोस्ती-यारी करने?”

“अरे सुनो तो जी!” माँ आगे होकर बेटी की ढाल बनने की कोशिश की|

“तुम चुप रहो, सब तुम्हारे ही लाड़-प्यार का नतीजा है| यह रोहित अवारा बना घूम रहा है| अठ्ठाइस वर्ष का हो गया, पर अभी तक इसके

कैरियर का कोई अता-पता नहीं है| और दूसरे ये छोटे मियाँ हैं, हर तीसरे साल फेल होते रहते हैं| और तुम्हारी लाड़ली है कि लफंगे दोस्त बनाती फिर रही हैं|" आशीष के क्रोध का घड़ा पत्नी के सिर पर फूट गया|

अग्नि बरसाती आँखों से पत्नी को घूरते हुए आशीष फिर शुरू हो गए, "तुम घर में बैठे-बैठे न जाने क्या करती रहती हो? इन सब को ठीक ढंग से संभाल भी नहीं पायी| तुम सही परवरिश देती तो ये ऐसे कतई नहीं होते, जैसे हैं| मैं अपनी नौकरी करूँ या इन सबको सम्भालूँ!

सुमेर सिंह के बेटे को देखो! वह 'आईएएस' हो गया| उनकी भी बिटिया इसी के कॉलेज से तो पढ़कर निकली है| उसे तो कभी किसी ने नहीं छेड़ा! आज वह भी सुमेर द्वारा ढूढ़े हुए लड़के से शादी करके खुशहाल जीवन जी रही है|"

"आप सहजता से कोई भी बात सुनते तो हैं नहीं, बस एक सिरे से अपराधी की तरह हम सबको एक लाइन में खड़ाकर सजा सुनाने लगते हैं| बच्चों के सामने मुझे भी डपटते रहते हैं| उनकी नजरों में तो आपने मुझे अनपढ़-गंवार ही साबित कर दिया है| और हाँ, सुमेर सिंह के बच्चों को देखने से पहले यह क्यों नहीं देखते हैं कि वह आपकी तरह नहीं हैं| वह नौकरी के साथ-साथ अपने बच्चों का भी पूरा ख्याल रखते हैं| नौकरी से ज्यादा उन्हें अपना परिवार प्यारा है|

'आईएएस' हो गया... हुँह! आईएएस ऐसे ही जादू से नहीं हो गया| उन्होंने अपने कंधो को हमेशा अपने बच्चों के लिए मजबूत रखा| और आप, आप समाज को मजबूत करने में अपना कंधा घिसते रहे| बच्चों के लिए तो उनके बचपने में भी आपका कंधा नसीब नहीं हुआ|"

"तुम क्या चाहती हो, रिजाइन करके घर पर बैठ जाऊँ?"

"कुछ कहो तो ले देके बस एक यही धमकी रहती है आपके पास| आपके इसी व्यवहार के कारण सारे बच्चे नालायक निकल गए, लेकिन सिर्फ आपकी

नजर में| वरना मेरी नजर में मेरे बच्चों से ज्यादा लायक पूरे मोहल्ले में किसी के बच्चे नहीं हैं| और सुनिए! आप अपनी नौकरी की तरह इन्हें भी अगर प्यार-दुलार दिए होते न, तो ये दिन हमें नहीं देखने पड़ते|” गुस्से और अपमान से तमतमाई सुषमा बादल-सी फट पड़ी थी|

रोहित जो अब तक शांत बैठा था, अचानक भड़क उठा, “आप दोनों आपस में ही लड़ लीजिये| मैं नौकरी नहीं पा रहा हूँ, क्योंकि आपने मुझे सही लाइन को पकड़ने के लिए गाइड नहीं किया| जिस पथ पर चलने की योग्यता मुझमें थी, उस रास्ते को मुझे किसी ने दिखाया ही नहीं| माँ ने अनभिज्ञ होने का बहाना बना लिया और आपने अपनी नौकरी का| आपकी इस नौकरी से हमें क्या मिला? आप देख ही रहे हैं| अब तो इज्जत भी जाने को है| अभी निक्की ने डरते हुए मुझसे कहा कि वह नालायक इसे उठा ले जाने की धमकी देकर गया है|”

“है कौन वह लड़का, क्या नाम है उसका?” आशीष की जुबान में अब थोड़ी नरमी आ गयी थी|

“वह इस आदर्श का दोस्त है|” रोहित ने आदर्श की तरफ इशारा करके कहा|

“चटाक” थप्पड़ की झन्नाटेदार आवाज कमरे में गूँज उठी| आर्दश भयभीत हो नील पड़े अपने गाल को सहलाता रह गया| बिजली की तरह कड़ककर पिता उसे डपटने लगे थे, “ऐसे नालायक दोस्त हैं तेरे, तभी फेल हो रहा है| सुधर जा और अपनी संगत सुधार ले, संगत का असर बहुत ज्यादा पड़ता है| तू चन्दन का पेड़ नहीं है जो साँप तुझे घेरे रहें और तू विषहीन बना रहेगा|”

क्रोध की बिजली निक्की को छूकर निकलती हुई आदर्श पर गिर पड़ी थी| आदर्श जैसे काठ हो गया था| माँ अब तक ठगी-सी खड़ी सब कुछ देख रही थी| जवान बेटे के गाल पर पड़े थप्पड़ की गूँज उसे अंदर तक हिला

गयी| उसे लगा कि एक पिता के सामने उसके बच्चे नहीं खड़े हैं, बल्कि एक पुलिस ऑफिसर के सामने अपराधी खड़े हैं और वह तिलमिलाया हुआ पिता उनको थर्ड डिग्री देने को उद्धत है| वह अपनी पूरी हिम्मत को समेटती हुई आगे बढ़ी और फोन उठाकर उसने '१०९८' नम्बर डायल कर दिया| उधर से 'हैल्लो' बोला गया तो सुषमा बोली, “हेल्लो सर! मेरी बेटी निक्की को उसके स्कूल छूटने के बाद, रास्ते में कुछ बदमाश लड़के अक्सर छेड़ते हैं| तकरीबन दस दिन से वे बहुत ज्यादा परेशान कर रहे हैं| अब तो उठा लेने धमकी भी देने लगे हैं| कृपा करके आप कुछ कीजिए| इन बढ़ती घटनाओं में कहीं आपके लिए यह भी बस एक घटना न बनकर रह जाए| आखिर ये आपके ही विभाग के परिवार की नाक का सवाल है और साथ में पूरी खाकी के साख का भी|”

फोन काटते ही आशीष आग बबूला हो उठा, “यह क्या किया तुमने? ये खबर उड़ते ही पत्रकार लोग कीचड़ उछालने लगेंगे मुझपर और पूरे डिपार्टमेंट पर भी|”

“तो क्या करती? उस उछलने वाले कीचड़ के डर से चुप रह जाती| आखिर मेरी बेटी का सवाल है| कीचड़ में मैं और मेरी बेटी की गर्दन पूरी तरह डूब जाय, इससे अच्छा है कि उसके पहले ही मैं बचाओ-बचाओ की आवाज लगाऊँ| कीचड़ के छीटें मंजूर हैं, पर कीचड़ में डूबना बिलकुल भी मंजूर नहीं है मुझे|”

“क्या तुम जानती नहीं हो कि ये पत्रकार लोग वर्दी वालों पर कीचड़ उछालने के फिराक में रहते हैं, और तुमने उन्हें वह मौका अपने हाथों से ही दे दिया| उन्हें तो मसाला चाहिए| खाकी-खादी वालों के घर के मसाले से ही तो इनकी टीआरपी की रेसिपी बनती-बिगड़ती है| ब्रेकिंग न्यूज के नाम पर कल को यही जज, यही वकील बनकर बिटिया पर तरह-तरह के सवाल दागेंगे! चटखारे लेते हुए टीवी में तिल का ताड़ बनाकर उसे पेश करेंगे| क्या सुन पाओगी तुम, सह पाओगी, बताओ तो जरा?”

“सब कुछ सुन लूँगी और सह भी लूँगी जी| बेटी पर आँच आये तो माँ क्या ही नहीं कर सकती है| कहने को भी बहुत कुछ कह और लड़ भी सकती है| क्या उनके घर बेटियाँ नहीं होती हैं, जो वे मेरी बात नहीं समझना चाहेंगे?”

सुषमा के तेवर देखकर बच्चे भी उसके साथ खड़े हो गए थे| आशीष सिर को पकड़े सोफे पर गड़े बस अब सुन रहे थे| उन्हें उनकी प्रतिष्ठा धूमिल होती दिखने लगी थी| बेटी को तो वह येन-केन-प्रकारेण बचा लेते, भले ही उसके लिए उन्हें पुलिसिया हथकंडे का इस्तेमाल करना पड़ता| परन्तु अपने आँखों से खाकी की इज्जत धूमिल होते कैसे देख सकते थे| उनकी आवाज की ठसक में अब बेचारगी उतर आई थी|

सुषमा ने कमर पर साड़ी का पल्लू बाँधते हुए घायल शेरनी-सी हुँकार भरी, “अब आप इत्मीनान से अपनी नौकरी करिए, मैं देख लूँगी| हिम्मत हो तो वे लफंगें, बिटिया को अब छेड़कर दिखाए?”

“तो अब तक क्यों चुप थी? उनके सामने तुम्हारी जुबान तब क्यों नहीं खुली?” मौका मिलते ही आशीष ने फुँफकारा| उसे लगा वह व्यंग्य तीर छोड़कर अपने घाव पर फाहा रख लेगा|

लेकिन... खिसियाई सुषमा ने दुगनी वेग से पलटवार किया, “अब तक आपके भरोसे थी| मेरे आगे आने पर, कोई आप पर उँगली न उठाए, इस बात का ध्यान रख रही थी| पर आपने तो मेरी ममता, मेरे अस्तित्व पर ही सवाल उठा दिया| कल ही बताती हूँ, अब आप देखिएगा मेरे स्त्रीत्व की ताकत!”

“जब स्वयं इतनी हिम्मती थी तो फिर चिंघाड़ी क्यों मूरख?”

“गलती हो गयी, अब एक स्त्री की हुँकार देखना आप भी और आपके पुलिस वाले साथी भी|”

पूरी शाम, फिर रात को सोने जाने तक घर में गर्मागर्मी का माहौल घने बादल-सा छाया रहा| जब तक आशीष दूसरे दिन सुबह-सबेरे ड्यूटी के लिए निकल नहीं गए, तब तक बिजली अब कड़की कि तब कड़की का डर बना हुआ ही था| उनके जाते ही मोहल्ले के लोगों के बीच सुषमा ने पूरी बात रखते हुए मदद की गुहार लगाई| स्त्री अस्मिता की दुहाई देकर सबको समझाने का प्रयास किया| मनोविज्ञान में ली गयी उसकी डिग्री यहाँ उसके खूब काम आई| कई बेटियों के माँ-बाप आए दिन बेटियों के साथ होती छेड़खानी से पीड़ित थे, अतः उसके समझाने पर साथ देने वालों की अच्छी-खासी संख्या जमा हो गयी| दोपहर तक नारों से पूरा मोहल्ला गूँज रहा था| ऐसी महिलाओं-लड़कियों की भी भारी तादाद जमा हो गयी थी, जो घर घुसुरु थीं| अग्रणी पंक्ति में सुषमा के साथ चलती सभी महिलाएँ नारा लगाती हुई उस मोहल्ले की ओर बढ़ने लगी थीं, जहाँ शोहदों के घर थे|

"अब न सहेंगे हम नारी का अपमान लेकर रहेंगे हम अब अपना सम्मान...|"

कदमताल के साथ नारों के स्वर में भी रोष भरता जा रहा था| उस लड़के के घर के सामने जाकर भीड़ थम गयी थी लेकिन रोष..., वो भला कहाँ थमने वाला था| खटकाने पर जब उसकी माँ ने दरवाजा खोला तो सुषमा शेरनी की तरह दहाड़ उठी| सुषमा की दहाड़ को सुनकर वह गीदड़ यानी निहाल अंदर ही दुबका रहा|

माँ को उसके बेटे की करतूत बताते हुए सुषमा क्रोध से काँप रही थी| स्थिति की भयावहता देखते हुए निहाल की माँ ने सुषमा से क्षमा माँगी और बोली, "बहिन जी, आइन्दा से मेरा बेटा निहाल आपकी बेटी ही नहीं, बल्कि किसी भी लड़की को कभी नहीं छेड़ेगा, इसकी गारंटी मैं लेती हूँ| यदि कभी ऐसा हुआ! तो मैं खुद ही इसे पुलिस के हवाले कर दूँगी| यदि नहीं करूँ, तो आपके जो मन आए, इसके साथ वही करियेगा, मैं इसका बचाव नहीं करूँगी|" क्षमा की मुद्रा में निहाल की माँ भीड़ के सामने अपराधी-सी खड़ी हुई थी|

सभी आपस में खुसुर-फुसुर कर रहे थे कि पुलिस आ गयी| दरोगा जी ने भीड़ से पूछताछ की और उनकी राय भी ली| निहाल के खिलाफ पहली कम्पेलन होने के कारण उसे दो-चार थप्पड़ लगाकर वार्निंग देकर छोड़ दिया गया| फिर दरोगा जी ने सुषमा से उनकी हिम्मत की तारीफ करते हुए बोले, "आप जैसी महिलाएँ आगे बढ़ें, तो ऐसी घटनाएँ उजागर हों और शोहदों का मनोबल बढ़ने ही न पाए|"

उसके अगले दिन ही सुषमा अखबारों की सुर्खियों में थी| हर तरफ उसकी वाह-वाही हो रही थी| उसकी सूझबूझ और हिम्मत की कहानियों से समाचार पत्र का सिटी समाचार वाला पन्ना भरा हुआ था| दुनिया नामक समाचार-पत्र की हेडलाइन्स थी-

'अदम्य साहस दिखाते हुए महिला ने अपनी बेटी की एक सिरफिरे से की रक्षा'

समाचार-पत्र पढ़कर रोहित गद्गद् हो गया था| अगले ही पल एक दूसरे समाचार पत्र की खबर पर उसकी नजर गयी| 'एक पुलिस वाला ही शोहदों से अपनी बेटी की रक्षा करने में असमर्थ रहा' तो वह क्रोध से बड़बड़ाया, साले मसाला ढूढ़ ही लेंगे, लेकिन अगले ही पल उसे माँ की दी सीख याद आ गयी| उसने अपने क्रोध पर काबू करके समाचार पत्र को मोड़कर मेज पर रख दिया| थोड़ी देर बाद वह रसोई में जाकर माँ को समाचार की सुर्खियों से अवगत कराता रहा| और माँ जल्दी-जल्दी पराठा बेलते हुए सब सुनकर मुस्कराती रही|

रसोई में आलू के परांठे बनाती हुई माँ के गले में बाहें डालकर रोहित बोला, "माँ, आपका स्वाभिमान यूँ ही बना रहेगा| कराटे की कक्षाएँ कहाँ चलती हैं, मैं कल ही पता करके निक्की का नाम उसमें लिखवा दूँगा| ताकि यह आत्मरक्षा के गुर सीख सके|" निक्की जो पराठे सेंकने में माँ की मदद

कर रही थी, खुशी से उछलती हुई बोली “हाँ भैया! ये ठीक रहेगा| मुझे भी अपने को मजबूत बनाना है, ताकि लफंगों से मैं खुद की और

औरों की भी रक्षा कर सकूँ|”

तीनों बच्चे बारी-बारी से अपनी माँ के गले लग अपने-अपने कमरे में पढ़ने चले गये| इस प्रण के साथ कि आगे से हम तीनों कभी भी अपना और अपने माता-पिता का सिर नीचा नहीं होने देंगे और न ही आज के बाद से अपनी माँ को पापा के सामने कमजोर साबित होने देंगे| बच्चों का इतना कहना भर था कि माँ का चेहरा सूरज-सा दमक उठा|

--०--

तुम ठीक कहते थे

"बहू...बहू..., ...बेटा..!" एक मिनट चुप्पी| "ओ नेहा.., नेहा बिटिया...!" थोड़ी देर फिर से चुप्पी| "आह...सुन रहा है कोई?" अपना पूरा जोर लगाकर ऊँचे स्वर में चिल्लाई| "कोई नहीं सुनेगा| यह बुढ़ापा भी, तन को ही नहीं, आवाज की हनक को भी कमजोर कर देता है|" धीरे से बुदबुदाई वीणा|

"अरी ओ बहू, बेटा आयुष!" हारकर वह पंखे की घर्रर्र घर्रर्र करती ध्वनि को सुनती हुई स्वयं को बहलाती रही| "कोई है घर में?"

"बहू...बहू..!" थोड़ी- थोड़ी देर रूक-रुककर कई-कई बार बच्चों को हाँक लगा चुकी थी वीणा| "देख रहे हो, कोई सुन ही नहीं रहा है| सब के सब कानों में जैसे रुई डाले बैठे हैं| मेरी पुकार उन तक पहुँच ही नहीं रही है| मेरी इस स्थिति पर तुम भी बैठे-बैठे मुस्करा रहे हो न! आखिर तुम मुझ पर मुस्करा ही तो सकते हो और कर भी क्या सकते हो| ऐसा तो है नहीं कि तुम यहाँ होते तो मेरी एक आवाज पर दौड़े चले आते|"

बक-बकाती हुई वीणा सामने की दीवार पर लगी तस्वीर को एकटक देखे जा रही थी| अचानक न जाने क्यों उसे ऐसा लगा कि तस्वीर की आँखों में आँसू भर आए हैं| प्यार से भरी तस्वीर का बेचैन हुआ चेहरा बेबस हो जैसे निहार रहा था उसको| वीणा ने महसूस किया कि उसके पति का चित्र उससे अभी ही कुछ बातें करना चाह रहा था| दीवारों के कान होते हैं लेकिन यहाँ तो उसके पति की तस्वीर में उसे कान, नाक और

आँखें सब दिख रही थीं, जिनसे उसका पति उसके हर दुख-दर्द को सुन-समझ और देख सकता है| पति की दी हुई घुड़की भी अब उसे जैसे सुनाई पड़ रही थी| अचानक उसे लगा कि उसका पति उसे असहाय देखकर दुखी हो गया है| उसकी बेबसी को महसूस करके वह रो पड़ी|

"मैं भी न!" अपने सिर पर अपने हाथ से मारती हुई कहती है, "मैं भी तुम्हें क्या-क्या सुना दे रही हूँ| मैं जानती हूँ, तुम यदि होते यहाँ तो मेरे बस एक शब्द पर अवश्य ही दौड़े आते| जैसे विष्णु भगवान नदी में मगरमच्छ के द्वारा पकड़े गए हाथी की गुहार पर भागे आए थे| और उस हाथी को मगरमच्छ का शिकार होने से बचा लिया था उन्होंने|"

करवट लेकर पुनः बोली वीणा, "सुनो! मैं भूली नहीं हूँ वह दिन जब मेरी बच्चेदानी को मेरे शरीर से अलग कर देने के लिए ऑपरेशन हुआ था| मैं अस्पताल के बिस्तर पर दस दिन तक असहाय-सी पड़ी हुई थी| रात दिन तुम ही तो थे जो मेरी सेवा में लगे हुए थे| एक स्त्री के लिए डॉक्टरों द्वारा उसकी बच्चेदानी को निकाल बाहर करना बहुत दुखद स्थिति होती है| तन-मन सब घायल हो जाते हैं, ऐसा लगता है जैसे स्त्री कोस्त्री का दर्जा दिलाने वाला अंग ही शरीर से विलग करके, स्त्रीत्व विहीन कर दिया गया हो| मन से टूट चुकी थी मैं भी| लग रहा था अचानक हरे भरे पेड़ से उसकी सारी पत्तियाँ बेरहम मौसम के द्वारा छीन ली गई हों, परन्तु तुम्हारे प्यार और सहयोग ने मेरी जिंदगी में फिर से बहार ला दी थी| पतझड़ के बाद जैसे बसंत-बहार आ जाती है, वैसे ही उस दुखद स्थिति में तुम मेरा बसंत बनकर मेरे साथ खड़े थे| अपनी सेवा के लिए मुझे कहाँ जरूरत थी बेटा-बेटी या फिर किसी रिश्तेदार की| तुम ही मेरा सहारा थे| तुम ही मेरे नाविक, तुम ही मेरी पतवार| मैंने तो उन दुखद चंद महीनों को पलक झपकते ही बीता दिया था| हाँ..., हाँ मालूम है तुम उलाहना दे रहे हो मुझे|" घर्र...घर्रर्र...करता हुआ पंखा भी जैसे कि उलाहना-सा दे रहा था|

कमरे में थोड़ी देर को शांति पसर गयी थी| वीणा अपने अंतर्मनके न जाने किस कोने की थाह लेने चली गयी थी| छोटा-सावह कमरा ज्यादा देर शांत नहीं रह पाया था| कमरे के दरवाज़े की ओर मुँह करके वीणा ने फिर से तेज स्वर में टेर लगाई “बहू..., ...बेटा...! ...अरे ओ नेहा...!” हाँक के बाद कमरे में फिर शांति व्याप्त हो गयी| पंखे की वही चिर-परिचित घर्र-घर्र की ध्वनि चुप्पी की साँकलें तोड़ती रही थी|

“देख रहे हो बहू-बेटा-बेटी कोई नहीं सुन रहा है| न जाने किस कोपभवन में बैठे हैं सब| बहू तो अपने कमरे में धारावाहिक देख रही होगी| सास को सताती हुई बहुओं वाले नाटक उसे बहुत भाते हैं| और नेहा...! वह गाने सुन रही है| न सुर, न ताल आजकल के इन गानों में| लेकिन इस युग के बच्चे उन्हें ऐसे सुनते हैं जैसे कि कोई शास्त्रीय संगीत सुन रहे हों| देखो तो स्पीकर की आवाज कितनी तेज कर रखी है उसने| यहाँ तक सुनाई पड़ रही है|" पति की तस्वीर से शिकायत करते हुए उसका मुँह उस समय किसी बच्चे द्वारा बेली गई रोटी-सा हो गया था, बिलकुल टेढ़ा-मेढ़ा|

थोड़ी देर चिंतित रही, फिर तस्वीर देखकर बोली, “तुमने अपनी जीवन भर की कमाई को लगाकर इस घर को बनवाया था| मैंने कितनी बार कहा था कि क्यों परेशान होते हो, बना बनाया एक फ्लैट खरीद लेते हैं| लेकिन नहीं, तुमको तो जिद थी कि अपना घर बनवाऊँगा, वह भी अपने सपनों के मुताबिक| बच्चों के अलग-अलग कमरे होंगे, एकबड़ा-सा कमरा हम दोनों का| कमरे का एक-एक फर्नीचर भी घर में कारीगर लगवाकर तुमने बनवाया था| नौकरी से चाहे जितना भी थक-हार कर आते थे, लेकिन मजदूरों के साथ खड़े होकर उन्हें हिदायतें देना कभी नहीं भूलते थे| बहू के आतेही ड्राइंग-रूम से लगा अपना बड़ा वाला कमरा मैंने कुछ महीने बाद ही बहू को दे दिया था| खुद मैं घर के पीछे वाले इस हिस्से में आ गयी थी| पश्चिम की ओर बना छोटा-सा यह कमरा जो पहले बेटे का

कमरा हुआ करता था| इस बात पर कुछ दिन क्या साल भर तुम मुझसे नाराज रहे थे| 'बूढ़ा गए हो, क्या करोगे बड़े कमरे का'? मेरे यह कहते ही मुझ पर भड़क गये थे तुम| 'अरे बड़े-बुजुर्ग लोग घर के आगे की ओर होते हैं पीछे नहीं| मैं अपने ही घर में पीछे कोने में पड़ा रहूँ! हरगिज नहीं! तुमने यह अच्छा नहीं किया वीणा| बहूके आते ही उसको तुमने सिर पर चढ़ा लिया| देखना! एक दिन बहुत पछताओगी| जिस घर में घुसते ही बड़े-बुजुर्ग के बजाय बच्चे आगे के कमरों पर कब्जा किए बैठे हों, उसघर में यह मान कर चलो कि बड़े-बुजुर्गों का सम्मान बिल्कुल नहीं है और तुमने तो अपने हाथ से ही अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार ली है|' कितना-कुछ सुनाया था तुमने मुझे|" वीणा की आँखों से पछतावे के आँसू बहने लग गए|

"तुमने सच ही कहा था| अभी मुझे लकवा मारे दस दिन भी नहीं बीता है, बच्चोंके रंग-ढंग दिखने लगे हैं| अभी तक तो मैं अस्पताल में थी इसलिए ज्यादा एहसास नहीं कर पाई थी| कल जब से आई हूँ घर पर, लगता है सच में बेटे-बहू मुझे कोने में धकेलकर चैन की साँस ले रहे हैं|" वीणा के आँखों से फिर से दो बूँद आँसू ढूलक गए| 'तुम भूल रही हो उन लोगों ने तुम्हें नहीं धकेला| तुम खुद!' तस्वीर के बोलते ही वीणा चीखी-सी थी, "हाँ, हाँ मानती हूँ मैं| बच्चों के प्यार में अंधे होकर जीवन में ऐसे कई निर्णय होते हैं, जो माँ-बाप लेने में गलती कर देते हैं| मैंने भी किया, लेकिन... छोड़ो, तुम नहीं समझोगे!" घर्र-घर्र का चिर-परिचित स्वर सन्नाटे को बाधित करने के लिए जैसे प्रतिबद्ध था|

पति की तस्वीर जैसे कि पास आकर खड़ी हो गई थी| तस्वीर बोल रही थी, 'मेरे गुस्से को तो सिलसिलेवार याद कर लिया| तनिक मेरा प्यार भी याद कर लो बुढ़िया!'

"हाँ, हाँ क्यों नहीं, क्यों नहीं, याद करके बताऊँगी उसे भी, क्यों अधीर हुए जाते हो| पताहै मुझे मेरे मुख से तुम अपनी प्रशंसा मात्र सुनना चाहते हो|

तुम्हारे प्यार को तो मेरा रोम-रोम याद करता है| ऐसा कोई पल बीता क्या, जिसमें मैंने तुम्हें याद न किया हो, भला बताओ तो जरा| वहाँ खाली बैठे-बैठे मुझ पर ही तो तुम्हारे मन की नजरें टिकी होंगी! या खुली आँखों से किसी और को ताड़ते रहते हो, बताओतो!" कहकर हँसने लगी वीणा|

जीवन में जो छोटे-मोटे दुख आते हैं वह आपको दुखी करने नहीं बल्कि रिश्तों के रेनोवेशन करने के लिए आते हैं| जैसे खूबसूरत से खूबसूरत घर को एक समय बाद लिपाई-पुताई चाहिए होता है, उसे और बेहतर बनाने के लिए| उसी तरह रिश्तों को ताजा-तरीन करने के लिए उसे पॉलिश चाहिए होता है, जो एक दूसरे के आत्मीय लगाव के कारण ही हो पाता है| सुखमय जीवन में क्षणिक दुख आकर बस यही पॉलिश का काम करता है| जिससे रिश्तों में नया निखार आ जाता है| वीणा को भी बस उसी पॉलिश का इन्तजार था|

करवट बदलकर तस्वीर की ओर प्यार से निहारते हुए बोली, "याद है तुम्हें! ऑपरेशन के बीस दिन बाद ही भांजे की शादी थी| झुककर कोई काम करने और नीचे जमीन या पलंग पर आलथी-पालथी या फिर उकड़ूँ बैठने से डॉक्टर ने मना कर रखा था| बामुश्किल ट्रेन का सफर करके बनारस पहुँची थी| गड्ढे में बनी सड़कों के कारण मुझे परेशानी होगी, इसलिए तुमने निश्चय किया था कि गाँव नहीं जायेंगे| बनारस में रहकर ही शादी और प्रीतिभोज अटेंड करेंगे| वहाँ मुझे और कोई असुविधा न हो इसलिए तुमने होटल में एक कमरा बुक करवा लिया था| न अपनी ससुराल गये थे, न किसी रिश्तेदारी में, क्योंकि डॉक्टर के मुताबिक मैं इंग्लिश टॉयलेट में ही बैठ सकती थी| पल-पल तुम मेरा ध्यान रख रहे थे| शादी से दो बजे रात लौटने पर लाईट जाने से होटल की लिफ्ट बंद होने पर 'धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ लूँगी' कहाथा मैंने, लेकिन तुम थे कि हंगामा कर बैठे थे| 'मेरी पत्नी का ऑपरेशन हुआ है, वह सीढ़ियाँ नहीं चढ़ेगी| कमरा लेने से पहले ही मैंने बताया था| नीचे वाले फ्लोर पर कमरा देने

को कहा था, लेकिन आप लोगों ने कहा कि 'लिफ्ट है सर, आपको कोई दिक्कत नहीं होगी'|' तुम्हारी तीक्ष्ण भाषा सुनकर होटल वालें भी सकते में आ गए थे| मैनेजर ने मालिक को फोन कर दिया था| होटल मालिक को आकर खुद व्यवस्था देखनी पड़ी थी| लिफ्ट चलने के बाद ही तुम शांत हुए थे|" याद आते ही हँसते हुए वीणा खाँसने लगी| थोड़ी देर बाद मंद-मंद हँसते हुए बोली, "तुम भी न...!"

उसे फिर से बाथरूम जाने की जरूरत तेजी से महसूस हुई| बोझिल दुखी मन लिए वह फिर से बेटी-बहू को पुकारने लगी| आवाज उसके कमरे से तो जा रही थी, परन्तु उन दोनों के स्वर के साथ वापस नहीं हो रही थी| उसकी निगाहें फिर तस्वीर पर टिक गयी| "जानती हूँ तुम कह रहे हो कि 'शेरनी की तरह दहाड़ती थी| सबतुम्हारे डर के कारण एक आवाज में ही हाथ बाँधे खड़े हो जाते थे तुम्हारे सामने'| समय कितना जल्दी बदल जाता है| आदमी को उसके जीवन काल में ही उसके जीवन के कई रूप-रंग दिखाई पड़ जाते हैं|" घर्र...घर्रर्र...थोड़ी देर तक सन्नाटे में खलल डाल रहे पंखे को वीणा अपलक निहारती रही|

"शादी के बाद प्रीतिभोज के दिन जाने से पहले शैंपू निकालकर मैं बाथरूम की ओर बढ़ी ही थी कि तुम प्यार से डपटकर बोले थे 'नीचे नहीं बैठना| रुको मैं आता हूँ!' कहकर आ गए थे बाथरूम में| बच्चे की तरह तुमने नहलाया था मुझे| उस समय मुझे तुममें अपना पति नहीं, पिता दिखाई दे रहा था| मेरी देखभाल उन दिनों ऐसे कर रहे थे जैसे कोई पंसारी पान के पत्ते की करता है| फिर से मुस्करा रहे हो ना! सोच रहे हो कि इतने सालों बाद आज भी कैसे याद है सब! क्यों न याद रहे भला! जब तुम्हारी डाँट याद है तो फिर प्यार क्योंकर नहीं याद रहे| वैसे भी तुम जानते ही हो, महिलाओं की याददाश्त इन मामलों में बेहद

तीक्ष्ण होती है|" खिलती कली-सी मुस्कान की गमक कमरे को भर गई थी|

वीणा को लगा उसके साथ उसके पति श्याम की तस्वीर भी भावुकता से भर उठी है| वह तस्वीर को निहारते हुए बोली, "इस तस्वीर में कितना गाल फूला लिए हो! ऐसा लग रहा है जैसे किसी पर गुस्सा होने के बाद फोटो खिंचवाने बैठ गए थे| थोड़ा हँस भी लिया करो, या फिर तुम्हें सिर्फ मुझ पर ही हँसना आता है|" अतीत के गलियारों में घूमते हुए उसे अचानक फिर याद आया कि उसे बाथरूम जाना था| उसने बेटी को फिर से पुकारा- "नेहा...! अरी ओ नेहा...!"

लोग कहते हैं बेटियाँ सेवा करती हैं, परन्तु मेरी तो बेटी भी नहीं सुन रही है| 'मम्मी, मम्मी..! कर लिया, धुला दो| गैस पर सब्जी का मसाला भूनते समय में भी बेटी नेहा की आवाज को सुनकर, गैस बंद करके दौड़ पड़ती थी बाथरूम की तरफ| जब दोनों भाई-बहन आपस में लड़कर उनमें से कोई भी रोने लगता था तो घी की गगरी भी लुढ़क रही हो तो भी बच्चों की तरफ भागती थी| बिटिया नेहा को बेटा आयुष हाथ भी न लगाए, मारना तो दूर की बात थी, इसका हमेशा ध्यान रखती थी मैं| क्या मजाल था कि गुस्से में भी कभी उसने चुटकी भी काटी हो नेहा के| गलती भले नेहा की ही क्यों ना हो, मगर मुझसे डाँट आयुष ही खाता था| मैं उसे समझाते हुए हमेशा उससे कहती थी कि कल को यह अपने घर चली जाएगी| क्यों रुलाते हो, प्यार से रहो जैसे भविष्य में तुम्हें याद करे|"

थोड़ी देर चुप्पी ओढ़कर कमरे का जायजा लेते हुए नेहा द्वारा बनाई गयी पेंटिंग पर जाकर निगाह ठहर गयी| चुप्पी तोड़ते हुए कहने लगी, "कितनी मन्नते माँगी थी न मैंने कि बेटी हो| शोभित के बार ही चाहा था

कि बेटी हो जाए लेकिन...! ‘लड़का हुआ है’ कहकर जब हर्षातिरेक में नर्स आकर मुझसे ईनाम में हजार रूपये की माँग की थी तो लड़का सुनकर ही मेरा चेहरा लटक गया था| बस रोयी ही भर नहीं थी लेकिन दुख रोने जितना ही हुआ था| जबकि अम्मा कितनी खुश थी कि उनकी तीसरी-पीढ़ी में पहली बार पहली सन्तान रूप में बेटा हुआ है| अस्पताल में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं बचा था जिन्हें उन्होंने मिठाई नहीं खिलाई हो, यह कहकर कि आज मैं दादी बनी हूँ वह भी पोते की| तुम भी तो कितने खुश थे न उस दिन| लग रहा था जैसे तुम्हारी भी कोई दबी हुई इच्छा पूरी हो गई हो| बाबूजी ने पंडित बुलाकर मुहूर्त जानना चाहा था| मूल नक्षत्र में जन्म पता चलते ही मायूस हुए थे सब| तुम्हें बच्चे को देखने की सताइस दिनों की मनाही हो गई थी| कितनी शिद्दत से उस नियम का पालन किया था तुमने, याद है ना! दस दिन बीतने पर जब तुम कमरे में आए थे तो उस समय मैं शोभित का चेहरा ढक नहीं पाई थी, कितना नाराज हुए थे| तभी जाना था मैंने कि तुम रीति-रिवाजों के सख्त अनुयायी हो| गलती से भी मेरी ऐसी कोई गलती कभी कहाँ माफ करते थे तुम| समय का चक्र देखो, जब आयुष का जन्म होने वाला हुआ तो भगवान ने मेरी गोद से शोभित को छीन लिया| उसकी आँखें बरसाती नदी-सी उफन आयी थीं| पंखा घर्र-घर्राता हुआ उसके दुःख में सहभागी हो लिया था|

आयुष के जन्म का बड़ी बेसब्री से इन्तजार था तुम्हारे अम्मा-बाबू को| आयुष के जन्म लेने पर सब खुश थे| खुशी को किसी की नजर न लग जाए इस डर से इस बार अस्पताल में मिठाइयाँ बाँटने से तुम्हारी बहन को मना करवा दिया था उन्होंने और खुद अम्मा ने भी गाँव में मिठाइयाँ नहीं बँटवाई थीं| उनकी खुशियों को उन्हीं की नजर न लग जाय इसके कारण वह शहर आई भी नहीं थीं उस दफा| अस्पताल से छुट्टी मिली तो किराए के मकान में जहाँ रहते थे उसी में आ गए थे हम सब| डॉक्टरों ने खास सावधानी बरतने की हिदायत दी थी, इसलिए गाँव नहीं जा पाए थे|

तुम्हारी बहन, जो महीने भर से साथ ही रह रही थीं, महीने भर के लिए और रुक गयी थीं वह| छठे दिन काजल लगाने की रस्म और बारहवें दिन सौर से निकल शुद्ध होने की रस्म वहीं बीती थी आयुष की|

रोजचार-पाँच बार मालिश करना| समय से नहलाना, दवा देना सब जिम्मेदारी निभाती थी मैं| मेरा खुदका भी कोई अस्तित्व है यह तो भूल ही चुकी थी मैं, बच्चे को पालने-पोसने में|

सुबह से शाम और शाम से सुबह सूरज-चाँद-सी क्रियाशील रहती थी| अपने लिए नहीं सिर्फ और सिर्फ बच्चे की देखभाल के लिए| उसकी मालिश करके उसको जब फ्रॉक पहना देती थी, तो तुम्हारी बहन मुझ पर खूब गुस्सा होती थी| 'बेटा हो गया है न, इसलिए बेटी का शौक पाल रही हो| बेटी हो जाती तो खून के आँसू रोती'| 'न जिज्जी मैं तो नहीं रोती' कहते ही भड़क जाती थीं| जैसे सुलगती हुई लकड़ी में कोई पूरी साँस भरकर फूँक मार दिया हो| 'जिनकी लड़की ही लड़की हुई हैं उससे जाकर पूछो, फिर पता चलेगा| उनकी कदर न घर में होती है, न पति की नजरों में| भगवान का शुक्र मनाओ कि भगवान ने दूसरी बार भी तुम्हारी गोद में बेटा डाल दिया'| प्रतिदिन ही तुम्हारी बहन ऐसी दो-चार डोज मुझे दे ही देती थीं और मैं उनकी बातों को एक कान से सुनती और दूसरे कान से निकाल देती थी| आयुष को लड़कियों के कपड़े पहनाकर इतराती रहती थी| कितना लाड़ से पाला था आयुष को सब घर वालों ने मिलकर| चोट खाए दिल थे इसलिए भी आयुष को क्षणभर भी रोने नहीं दिया जाता था| कभी दादा, कभी दादी, कभी बुआ तो कभी आपके हाथों के पालने में ही झूलता रहता था आयुष| “खों...खों...!” मुझसे अब तो ज्यादा देर तक बोला भी नहीं जाता|" वीणा ने बगल में रखी भरी गिलास से दो घूँट पानी पीकर उसने अपने गले को तर किया| घर्र...घर्रर्र...करता पंखा अपनी अलग ही तान छेड़े हुए था|

“मेरी तो गोद में पहुँच ही नहीं पाता था आयुष, किन्तु जब तक एक बार मैं उसे गले से लगाकर हीक-भर प्यार नहीं कर लेती चैन नहीं पड़ता था मुझे| वह भी जब तक मेरे गले न लग ले उसके दिन की शुरुआत नहीं होती थी| जब किसमय के साथ बढ़ते-बढ़ते वह छबीस साल को हो चुका था लेकिन उसकी यह आदत नहीं छूटी थी| तुम कैसे जब तब उसको फटकार देते थे कि अब बड़े हो गये हो अब तो माँ के गोदी में सिर रखना छोड़ो| कल को तुम्हारी शादी भी हो जाएगी, तब तक क्या ऐसे ही करते रहोगे| ‘पापा! मेरी मम्मी, दुनिया की सबसे प्यारी मम्मी है| मेरी शादी भले हो जाए पर मम्मी की अहमियत थोड़ी कम हो जाएगी’, लेकिन आज...शादी के दो साल में ही...!” अनायास ही आँखों से आँसू पके महुवे से टपकने लगे थे| घर्र...घर्रर्र...की धुन निकालता हुआ पंखा भी कमरे में सरगर्मी बनाए हुए था|

पति के चित्र को देखती हुई वह पुनः बुदबुदाई– “बरही के दिन सौर से निकलने की रस्म थी| दिसम्बर माह की कड़कती ठंड में आयुष को नहलाकर सूप में लिटाने की रस्म! हा... हा..., वीणा हँसती हुई बोली, “कैसे साँस भरकर रोया था वह| लग रहा था सूप में नहीं बल्कि उसे किसी तालाब के कगार पर लिटा दिया गया हो| वह सूप से लुढ़क-लुढ़क जा रहा था|” याद करते-करते वीणा पलंग से उतरने की कोशिश में जमीन पर गिर पड़ी| उसका वॉकर थोड़ी दूर पर रखा था| घिसटते हुए वह उस तक पहुँचने की कोशिश करने लगी| तभी दो चिर-परिचित हाथों ने उसे सहारा दिया| चेहरा देखते ही बच्चों-सी बिलख पड़ी| घड़ी भर बाद सिसकते हुए वीणा ने रुँधे स्वर में कहा– “तुम ठीक कहते थे...”

--०--

उसके जाने का दुःख

सूरज का तेज उज्ज्वल रूप साँझ ढलते ही, हल्का सिंदूरी रंग में रंगने को आतुर था| शीला और उसकी जेठानी नीलिमा बिस्तर के आलस्य से अभी एक घंटे पहले ही उबरी थीं| दोनों ही अपनी-अपनी जिम्मेदारी बड़ी शीघ्रता से निपटा रही थीं| सूरज ढ़लने से पहले काम से निपटकर साज-शृंगार करके तैयार हो जाना चाहती थीं| धीमे-धीमे अस्ताचल सूरज के साथ दोनों के हाथ कार्य करते हुए गति पकड़ लिये थे| उनके पति पाँच बजते ही अक्सर दरवाजे पर दस्तक दे देते थे| शीला का पति भले ही थोड़ा लेट हो जाये, किन्तु नीलिमा के पति से तो घड़ी चलती थी| इधर कमरे में जैसे ही पाँच बजने का संगीत बजता तो उधर उसी समय दरवाजे की घंटी बजती, जो "साजन उस पार है" गाना कानों में सुनाकर शहद घोल दिया करती थी|

शीला का बेटा बंटी अभी बिस्तर का मोह नहीं छोड़ पाया था कि दरवाजे की घंटी बजी| घंटी को कसकर दबाये रखने के कारण घंटी के सातो गाने आपस में गड्डमड्ड हो रहे थे|

नीलिमा चौंकी, "अभी तो पाँच नहीं बजे! तुम्हारे जेठ को तो आने में अभी आधा घंटा है|"

“देखती हूँ दीदी|”

“अरे रुको, मैं देखती हूँ| कोई गाँव का लग रहा है| तुम बंटी का हाथ मुँह धुलवा दो जल्दी से|”

“अरे भइया तू, आवअ-आवअ बइठअ|” किवाड़ खोलते ही नीलिमा सायास मुस्कराकर बोली|

“तनी पानी लइ आवा शीला|”

“अरे न भौजी, पानी-वानी न चाही| बैठ बौ के टेम न बा|”

“काहे, का भ भइया, इतना काहे में बिजी हय, सब ठीक त बा?”

“नाही भौजी, कछुवो ठीक नाही बा! उ तोहरे घरे के बगले जौन रामलखन हयेन न, ओनकर बेटवा खतम होइ गवा|”

“का कहत हए, कब, कैइसे हो?”

“पता न भौजी! डागटर के पास दौरा-दौरा लैके आय भये हम सबे, मुना डागरवा ओहके बचाइ न पायेस|”

“का भ रहा ओके?”

“पता न भौजी, बुखार रहा दुइ दिना से! चार घंटा पहिले उल्टी सुरू भई, बंदय न होय| गाड़ी कइके भागत आये|”

“उही क शादी तै करे रहेन न कत्तव?”

“हाँ भौजी! शादी क तयारी चल्तय्य रही, पर का कहा जाय| उ उप्पर वाले के का मंजूर रहा, रामय जानय|”

उठते हुए पूछा, “भया कब तक अइहीं?”

“अवतै होइहीं|”

“अच्छा चलत हइ भौजी, भइया हरे आय जयही ता भेजी देय्ही रसूलाबाद घाट पर| छ बजे तक निपटी जाये सब|”

“सुनी के बहुतै दुख भ भइया! इनके अवतय मान भेजी थ|”

उनके जाते ही फिर डोरबेल के साथ मधुर संगीत बजा, लेकिन मन बेचैन था, अतः उसकी मधुरता कानों में रस नहीं घोल पाई| दिमाग भी जवान बच्चे की मौत को सुनकर सुन्न हो चुका था|

किवाड़ खोलते ही ‘ताऊ, ताऊ...!’ करते हुए बंटी उनके पास पहुँच गया| “बंटी! जा मम्मा से कह दे, ताऊ के लिए चाय बना दे! और ताऊ के लिए एक गिलास पानी तो लाकर दे|” नीलिमा ने बंटी से उदासी भरे स्वर में कहा|

“क्या हुआ? कुछ बात हुई क्या?” पति ने चिंतित स्वर में पूछा| वह कुछ बोलती कि तभी सुरेश भी आ गया| “लीजिए पानी-चाय पीजिए दोनों जन|” नीलिमा ने बुझे स्वर में कहा|

“भाभी, मुझे जोरो की भूख लगी है| अगर कुछ नाश्ता-वास्ता मिल जाता! आज ऑफिस की कैंटीन बंद थी, अतः दिनभर से कुछ नहीं खाया हूँ|” सुरेश दहलीज लाँघते ही भाभी को देखकर विनीत स्वर में बोला|

उसकी बात को अनसुना करके भाभी हटात बोल पड़ी, “पुनीत शांत हो गया|”

“अरे...! कैसे, कब?”

अभी- अभी, रामखेलावन आकर यही खबर देके गए हैं| गाँव तो जाना हो न पायेगा| न हो तो आप दोनों यहीं रसूलाबाद घाट होके आ जाओ|” यह सुनते ही देवर की भूख तो जैसे हवा हो गयी| उससे चार-पाँच साल ही तो छोटा था| चाचा-भतीजा की खूब छनती थी| वह भतीजे

बबलू के साथ अक्सर खेलता था, लड़ाई होने पर उससे शिकायत करने आ जाता था| वह भी अक्सर ही बबलू का फेवर न करके उसका पक्ष लेता था|

“ठीक है|” दोनों ही भाई उठकर चलने को हुए| “अच्छा एक तौलिया तो दे दो, नहाना भी तो होगा न!”

“कौन थे दीदी वे, किसकी मृत्यु हो गयी?” दोनों भाइयों के जाते ही अपने तीन साल के बच्चे को बिस्कुट पकड़ाती हुई शीला पूछ बैठी|

“अपने घर के सामने जो घर है न, उसी घर के परिवार का लाड़ला था| हमारे ससुर के चाचा के परिवार का ही है| तुम गाँव में तो रही नहीं हो कभी! देवर जी से पूछना उसके बारे में, वह सारी बात बतायेंगे तुम्हें| बहुत ही प्यारा बच्चा था| कहीं भी मुझे देखते ही काकी-काकी कहके दौड़ता हुआ आकर पैर छूता था| कोई भी सामान हो, हाथ से झट लेकर पहुँचा देता घर तक| चौबीस बरस का भी न पूरा हुआ था अभी| अरे मेरे बेटे बबलू का ही तो हमउम्र था वह| दोनों लड़ते-झगड़ते मगर रहते साथ ही साथ| यूँ समझो, दोनों की दाँत काटे की रोटी थी|”

“दीदी, फिर बबलू को भी फोन करके खबर करवा दीजिये न|”

“अरे नहीं, दूर की रिश्तेदारी है| फालतू उसे काहे डिस्टर्ब किया जाय| बैंगलौर कोई पास थोड़े है| फालतू वहाँ से आना-जाना| आने से मना भी कर दो, पर यह खबर सुनकर भी पढ़ने से उसका ध्यान हटेगा|” लापरवाही से बोली नीलिमा|

बात चल ही रही थी कि दोनों भाई आ गए| बाहर ही एक बाल्टी पानी रखकर नीलिमा बोली, “हाथ पैर धो लीजिये दोनों|”

फिर तौलिया पकड़ाते हुए बोली, “मैं गंगाजल लाती हूँ|” गंगा जल लाने अंदर गयी तो देखा शीला स्टोव जलाने जा रही थी| उसके माथे पर बल पड़े

परन्तु वह चुपचाप गंगाजल का पीपा लेकर बाहर की ओर चली गयी|
उसके माथे पर बल पड़े परन्तु वह चुपचाप गंगाजल का पीपा लेकर बाहर की ओर चली गयी| लौटकर आते ही जब उसकी नजर पानी चढ़े भगोने पर गयी तो भौंवें तिरछी करती हुई बोली, “क्या कर रही हो तुम...?”

“कुछ न दीदी, भूख लगी है बंटी को, उसके लिए बस मैगी बनाने जा रही हूँ| फिर बाद में खाना बनाती हूँ|”

जेठानी ने टोका, “अरे जानती नहीं हो क्या? जवान भतीजे की मौत हुई है| ऐसी खबर सुनकर, उस दिन घर में आग नहीं जलाई जाती है| उसे दूध दे दो|”

“अच्छा दीदी, मुझे नहीं पता था| वैसे उनके परिवार वालें तो यहाँ कोई नहीं हैं, फिर भी?” बेपरवाही से बोली थी शीला|

“देख न रहे हैं, तो क्या हुआ? यह तो आदमी अपने लिए करता है| रीति बनी है, पालन तो करना ही चाहिए न!” जेठानी की बात सुनकर शीला बेटे को गोद में बैठाकर दूध पिलाने लगी|

“अच्छा सुनो शीला, मैं तुम्हारे जेठ जी के साथ जरा यमुना किनारे जा रही हूँ| कुछ शांति मिलेगी, मन बेचैन हो उठा है यह सब सुनकर| परिवार के दुःख को सोच-सोच ही मेरा सिर फटा जा रहा है| वहाँ जाकर थोड़ा-सा सुकून मिलेगा|”

शाम ढल चुकी थी| रात होने को अब उतावली हो उठी थी| किन्तु घर में पसरा गम घर से जाने का नाम ही नहीं ले रहा था| शीला का पति भतीजे की शैतानियाँ सुना-सुनाकर दुखी हुआ जा रहा था| तभी जेठ और जेठानी के हँसने-खिलखिलाने की आवाज सुनाई पड़ी| दरवाजा खोलते ही चेहरे पे उदासी लटकाए जेठानी ने आम पकड़ाते हुए कहा, “लो शीला, बड़ी मुश्किल से मिला, इसको काटकर सबको दे दो|” शीला कभी सो गए

अपने भूखे बच्चे को देखती तो कभी घड़ी की ओर| उसके हाव-भाव से नीलिमा समझ गयी कि उन्होंने आने में बड़ी देरी कर दी थी|

माहौल को हल्का करने के उद्देश्य से वह बोली, “अरे जानती हो शीला, यमुना के किनारे बैठे-बैठे समय का पता ही नहीं चला| तुम्हारे जेठ की चलती तो अब भी न आते वो| कितनी शांति मिल रही थी वहाँ| मैंने ही कहा कि चलो सब इन्तजार कर रहे होंगे|”

“हाँ दीदी, क्यों पता चलेगा| दुखों का पहाड़ जो टूट पड़ा है!” शीला दुखी होकर व्यंग्यात्मक लहजे में बोली|

“हाँ सही में, उसके परिवार वालों पर तो टूटा ही है| हम सबको भी कुछ कम दुःख नहीं है| ये तो पूरा समय उसी बच्चे की चर्चा करते रहे| कह रहे थे वह बड़ा ही होनहार था| आईएएस की मेन परीक्षा की तैयारी कर रहा था| इन्हीं सब चर्चाओं में ध्यान न रहा समय का|” भावनाओं का भँवर-जाल छोड़ते हुए बोली|

“हाँ दीदी, ये भी उसी के किस्से सुना रहे थे कि कैसे बबलू और वह लड़ते-झगड़ते थे, फिर इनके पास आकर अपने झगड़े का निपटारा करवाते थे|” उनकी काजल भरी आँखों को ताड़ते हुए देवरानी ने कहा|

यह सुनकर भाभी ने देवर की ओर देखा तो उनकी आँखें लाल हो रखी थीं| वही लालिमा शीला की आँखों में भी दिख रही थी| लेकिन दोनों की लालिमा अलग-अलग भाव लिए थीं| नीलिमा शीशे की तरफ बढ़ी| उसे उसकी आँखों में सफेदी ही झाँकती मिली| आँखें मलती हुई वह पलंग पर बंटी के पास बैठ गयी|

“दीदी, साड़ी पर चटनी का दाग लगा हुआ है| पानी ले आऊँ, धो लीजिये, नहीं तो बिस्तर में चींटियाँ आयेंगी|”

सुनते ही नीलिमा का चेहरा फक्क पड़ गया| झेंपकर बोली, "इस बंटी ने गिरा दिया होगा| फ्रीज से चटनी निकालकर चाट रहा था बदमाश|"

"परन्तु दीदी, चटनी तो कल ही...!" उसकी बात को काटते हुए नीलिमा ने कहा, "तुम कुछ खाई कि नहीं? आ, ले आ| आम काट दूँ, तुम सब लोग खा लो| मुझे तो ऐसे में भूख ही नहीं लग रही है| मैं तो बस सोऊँगी वरना चिंता से मेरा ब्लडप्रेशर भी बढ़ जायेगा, सिर दर्द कर ही रहा है|"

"जी दीदी, यह गाउन पहन लीजिये, साड़ी को मैं धुलने में डाल देती हूँ|" गाउन पहनते हुए नीलिमा फिर से मायाबी जाल छोड़ते हुए बोली, "शीला, आम देवर जी को खिलाकर तुम भी खा लेना, समझी!"

"जी, जरुर!" कहकर वह गुस्से से भरी रसोई में आ गयी| रसोई में स्टोव पर मैगी बनाते हुए उसे उसके पति ने देखा तो बोला, "एक दिन भूखी रह जाओगी तो मर नहीं जाओगी! सुना नहीं क्या, भाभी ने क्या कहा?"

"सुना, मगर अपने बेटे और पति को भूख से व्याकुल होते हुए नहीं देख सकती हूँ| तुम्हें बच्चे का रोना भले न दिखाई दे, पर मेरा सीना छलनी हुआ जा रहा है| कितनी मुश्किल से उसे बहला-फुसलाकर के सुलाया है, मैं ही जानती हूँ| यह कैसी परम्परा है जो सिर्फ घर के भावुक लोग ही निभाएँ| चालाक लोग चाट-पकौड़ा खाकर भी दुखी होने की दुंदुभी बजाएँ|"

"तू चाहती क्या है?"

"जो कर रही हूँ|" क्रोध में भरी शीला ने अपने पति को प्रतिउत्तर दिया| जेठ-जेठानी के कान में आवाजें जा रही थीं, लेकिन दोनों ही सोने का नाटक बखूबी निभा रहे थे| इसका अंदाजा शीला को भी था, अतः वह

मन की सुनाए जा रही थी| ताकि उसके विरोधी स्वर उन तक पहुँचकर, उन्हें आगे के लिए आगाह कर दें|

"उस दिवंगत आत्मा ने देख लिया होगा कि हम उसके जाने से दुखी हैं| हमारी सच्ची प्रार्थना, हमारी भावनाएँ उस तक पहुँच गयी होंगी|" क्रोध ने स्टोव की लौ को तेज कर दिया था शायद| कुछ ही सेकेण्ड में मैगी की प्लेट पति के सामने रखती हुई बोली- "चुपचाप खाइए, शाम को ही आप कह रहे थे कि पेट में चूहे कूद रहे हैं| चाट-टिकिया न सही, सादी मैगी ही सही| इसको खाने के बाद भी आपके भैया-भाभी से ज्यादा हम सब भावनात्मक रूप से उस दिवंगत आत्मा के परिवार के साथ हैं|"

अपने बेटे को भी वह जेठानी के पास से उठा लाई| उसका पेट पसलियों से सटा देख आँखें डबडबा आयीं उसकी| बंटी को उठाते समय उसकी जेठानी ने अपने निद्रा के स्वांग को बरकरार रखा| शीला मन ही मन बुदबुदाई- "इनके नाटक के आगे तो फिल्मी नायिकाएँ भी फेल हैं|"

बंटी को भी मैगी खिलाते हुए बड़बड़ाई- "ढोल पीटने से श्रद्धांजलि नहीं होती है, बल्कि मन से देने से होती है, और हम मन से दुखी हैं उस दिवंगत आत्मा के लिए| भगवान उसको इस मायावी दुनिया से पूर्णतः मुक्ति दें|" हाथ जोड़ 'ॐ शांति' कह प्रार्थना करते हुए निद्रा की बाँहों में समाने के लिए बिस्तर पर पड़ गयी|

पति छत की ओर अपलक ताकता हुआ बोला, "सुनो, तुम ठीक कहती हो! वह जैसे अभी मेरे सामने खड़ा था, और कह रहा था 'चाचा धन्यवाद! दो चम्मच मैगी के लिए'|"

पति के चेहरे पर आत्मसंतुष्टी का भाव देखकर शीला के नयन एक बार पुनः छलछला उठे|

--०--

रेत का घर

“डैडी, डैडीss देखो ना! उधर मैंने वंडरफुल घर बनाया है|” शुभी अपने डैडी को झकझोर रही थी, परन्तु उसके डैडी तो यादों के गहरे समुद्र में गोते लगाये हुए डूब-उतरा रहे थे| फिर नन्ही शुभी की आवाज को वे कैसे सुनते|

समुद्र के किनारे सुहानी शाम रेत पर फ़ैल गयी थी| लालिमा लिए सूरज पानी में सोना बिखेरते हुए डूबने को था| ऐसी मस्तानी शाम में मियां-बीवी, प्रेमी-प्रेमिकाएँ एक दूसरे के बाँहों में सिमटे नयनाभिराम पल को जी रहे थे| लेकिन उत्तरी सागर तट के इन्हीं विहंगम दृश्यों के बीच विवेक और निशा बैठकर अपनी-अपनी अतीत के यादों के पालने में हिलोरें ले रहे थे| हूँ-हाँ में होती बात भी अब दोनों के मध्य सन्नाटे में तब्दील हो गयी थी|

दूर समुद्र के एक छोर से दिख रहे खम्बे की टिमटिमाती रोशनी विवेक के जख्मों को हरा कर रही थी| विवेक एकटक उसी टिमटिमाती हुई रोशनी को देखे जा रहा था|

पापा से रूठकर शुभी बगल में ही बैठी माँ से बोली- “मम्मा देखो न, डैडी मेरे बनाये रेत के घर को देखने नहीं चल रहे हैं| आप देखो, चलो ना मम्मा, आप ही देखो|” निशा की भी जैसे तंद्रा टूटी शुभी के झकझोरने पर|

निशा विवेक की ओर देखकर समझ गयी कि वह पूरी तरह से तल्लीन है अपनी भूली-बिसरी यादों में|

निशा शुभी के रेत के घर को देखकर बोली– "अरे, कितना प्यारा घर बनाया है| ओहो! इसमें तो गार्डन भी है!" शुभी मचल उठी प्रशंसा सुनकर|

"अच्छा! यह कुआँ भी बनाया है क्या?" जब तक निशा यादों के गलियारे से बाहर आकर अपने शब्द का मतलब बताती, शुभी ने सवाल जड़ दिया- "कुआँ! यह क्या होता है? मैंने तो यह स्विमिंगपूल बनाया है| ब्यूटीफुल है न?" उसकी चहकती आँखों से खुशी छलक रही थी|

निशा मुस्कराते हुए बोली- "कुआँ, जिसमें अंडरग्राउंड वाटर होता है| जो कि ठंडा और स्वीट होता है| तुम्हारी दादी यानी ग्रैंडमदर के यहाँ है| जब चलूँगी कभी इंडिया, तब दिखाऊँगी तुम्हें|"

शुभी की गोलमटोल आँखें विस्फारित-सी हो रही थीं| शुभी फिर दादी को लेकर कोई और सवाल न करने लगे, उससे पहले ही वह उठकर खड़ी होते हुए बोली, "मैं अभी आती हूँ, तुम खेलो|"

यादों के झरोखों से निकलकर आती ठंडी-गरम हवा उसे भी विचलित कर रही थी| वहाँ से उठकर वह विवेक के बगल में जा बैठी और मौन तोड़ती हुई हौले से बोली, "किन यादों में खोए हुए हो!" विवेक ने निशा की बात को अनसुना कर दिया|

किंतु निशा द्वारा दुबारा जोर देकर कहने पर वह बोला- "वह दूर खड़ा स्तम्भ देख रही हो न! उस स्तम्भ की लाइट ने मुझे उन्हीं पुराने दिनों की याद दिला दी जिससे मैं सालो से पीछा छुड़ाना चाह रहा था| इसी तरह की स्ट्रीट लाइट के नीचे बैठ पढ़-लिखकर आज इस मुकाम को हासिल किया है मैंने| मम्मी-पापा ने कितने सपने बुने थे मुझे लेकर| जैसे तुम और मैं शुभी को लेकर बुन रहे हैं| क्या तुम बता सकती हो कि हमारे देखे सपनों को पूरा करने के

बाद शुभी पलटकर आएगी हमारे पास? क्या उसे उसका जीवन-साथी आने देगा!”

इस तरह यादों में विवेक का यदा-कदा गुम हो जाना, निशा को उसकी अपनी गलतियाँ याद दिलाता रहता था| सूखे हुए उसके घाव जब-तब हरे हो जाते थे| विवेक कभी भी गड़े मुर्दे उखाड़कर उसका पोस्टमार्टम नहीं करता था| लेकिन उसका खामोश हो जाना या एक-दो जलते हुए शब्द उछाल देना ही निशा के मन में भँवर ला देता था|

आज उसका ऐसा बोलना ही निशा के दिल तक तीर चुभो गया था| लगा जैसे विवेक तंज कस रहा हो| वह तुरन्त विवेक के कंधे पर सिर रखकर बोली, “एक महीने बाद ही शुभी के स्कूल की छुट्टियाँ हैं| चलो! चलेंगे भारत, मम्मी-पापा से मिलने|”

विवेक फटी आँखों से निशा को देखने लगा| उसे शायद विश्वास नहीं हो पा रहा था निशा की बात पर|

“ऐसे क्या देख रहे हो! मुझे एहसास हो गया है कि घर दीवारों से नहीं अपनों की खुशियों से बनता है| और अपनों की खुशियों को समेटने के लिए मैं तुम्हारे साथ अपने घर चलने को तैयार हूँ|” कहते हुए वह शुभी के बनाये रेत के घर को देखने लगी|

विवेक की खुशी का ठिकाना न रहा| वह तो मन से महीने भर बाद क्या जैसे उसी वक्त माता-पिता के पास पहुँच गया था| इधर समुद्र की लहरें उसके पैरों को गुदगुदाकर लौट जाती थी| उधर पुरानी यादें भी गुदगुदाने लगी थीं|

“अब कहाँ खो गए? कहा न कि चलूँगी मैं भारत|”

“आज पंद्रह साल बाद तुम्हारी बुद्धि कैसे जागी, यह सोच रहा था मैं|” तिरछी दृष्टी डालते हुए व्यंग्य से मुस्कराया वह|

सुनकर निशा उसके सीने पर प्रहार करने लगी और दोनों खिलखिलाने लग पड़े| समुद्र की लहरें भी दोनों के पैर के पास आकर उन्हें छू जाती थीं| जैसे खुशी जता रही थीं वे भी|

ठहाके सुनकर शुभी फिर से पापा के पास आकर बोली- “डैडी, आपने मेरा घर नहीं देखा| कट्टी आपसे|”

विवेक झट से उठ खड़ा हुआ| उसकी उँगली पकड़कर बोला– “चलो, चलो दिखाओ अपना घर|” तीनों ही खुश होकर रेत से बने घर से खेलने लगे| “समुद्र-तट के इतने पास बनाया है, जल्दी ही शैतान लहरें तोड़ देंगी|” विवेक ने शुभी से कहा|

शुभी तुरन्त बोली – “ओफ्फो डैडी, नहीं टूटेगा|”

रेत से बने घर की दीवारें भले मजबूत नहीं थीं पर प्यार के साँचे में ढली थीं| प्यार का सीमेंट रेत से बने घर को भी मजबूती दे रहा था| विवेक ने देखा की लहरें दूर से ही लौट जा रही थीं| शायद शुभी का विश्वास पानी को पास नहीं आने दे रहा था|

विवेक को उस रेत के घर में अपने माँ-बाप के द्वारा खून पसीने की कमाई से बनाये घर की छवि दिख रही थी| जैसे शुभी इस रेत के घर को बनाकर खुश हो रही है, वैसे पापा भी तो उस ईंट-पत्थर के घर को बनाकर कितने खुश थे| जिस दिन घर बनकर पूरा हुआ था, पापा-मम्मी ने सत्यनारायण की कथा करके पूरे मुहल्ले को भोजन कराया था|” कहकर विवेक फिर से अतीत को टटोल आया|

“हर क्षण तुम्हें याद है?” आश्चर्य से बोली निशा|

“हाँ निशा! मैं उनके हर कष्ट का गवाह हूँ| रिटायरमेंट के बाद साल-भर पापा और मम्मी ने कड़ी मेहनत करने के उपरांत उसी दिन चैन की सांस ली थी और कहा था कि अब रहेंगे आराम से अपने घर में|”

“यह तो सच है, अपने द्वारा बनाये घर को देखने-सा सुख कहीं नहीं!” निशा रेत के घर से खेलती हुई शुभी के चेहरे को देखकर बोली|

“बिलकुल, मेरा कमरा मम्मी ने कितने करीने से सजाया था| हर चीज मेरे पसन्द की थी उस कमरे में| दर्पण के नीचे बने दराजों को खोलकर जब मैंने सवाल किया था कि ‘मम्मी ये सब क्या बनवाया है!’ तो मेरे कान पकड़कर माँ बोली थीं, "ये तेरी बहुरिया के लिए है| इसमें वह अपने शृंगार का सामान और चूड़ियाँ रखा करेगी|”

“तुम्हारी नौकरी लगने के पहले ही शादी के सपने देखने लगी थीं माँ?” मुस्कराते हुए निशा ने पूछा|

“नहीं, मेरी नौकरी लगे अभी छः महीने भी नहीं हुए थे लेकिन उसके कानों में मेरी शादी की शहनाई बजने लगी थी| वह रह-रहकर न जाने कहाँ खो जाती थीं| मुझे उन्हें वर्तमान में खींचना पड़ता था| मेरी बलइयाँ लेकर हौले से वह मुस्करा देती थीं|”

निशा की ओर देखते हुए बोला- “मदर्स भी कितने सपने बुन लेती हैं न| जबकि वे खुद भी नहीं जानतीं कि भविष्य की गर्त में क्या छुपा हुआ है| मेरी शादी तय होते ही उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे| पूरे घर को दुल्हन की तरह सजवाया था उन्होंने|” फिर शहर की चकाचौंध भरी रोशनियों की ओर देखकर विवेक बोला- “इसी तरह मेरा पूरा घर अपनी सुंदरता पर जैसे इठला रहा था उस दिन| उसकी दीवारें और दहलीज भी नयी बहू के स्वागत में दमक रही थीं| कण-कण, क्षण-क्षण से खुशी के गीत फूट रहे थे| माँ तो अचानक बूढ़ी से जवान हो उठी थीं| दौड़-दौड़कर सबको दिशा निर्देश देती फिर रही थीं|” याद करते-करते विवेक की आँखों में चमक जाग उठी|

“मेरे भी घर में वही माहौल था लेकिन शादी के गीतों पर मेरी माँ की आँखों में आँसुओं की गंगा-जमुना बहने लगती थी|” निशा की आँखों में पानी तैर आया|

उसके चेहरे को हाथ में लेकर उसके आँसू पोंछकर विवेक ने कहा– “तुमने जब घर के अंदर प्रवेश किया था तो माँ तो खुशी से फूली नहीं समा रही थी| सभी रिश्ते-नातेदार 'चाँद उतर आया तुम्हारे घर तो' कहकर मुस्करा रहे थे| माँ बहू की तारीफ सुनकर पुलकित हो रही थीं| दोनों हाथ की मुड़ी हुई उँगलियों को जोड़कर बजा देती थी| कहती किसी की नजर न लगे मेरी बेटी को|”

“सच में मम्मी तो बहुत खुश थीं लेकिन आज मैं समझी उन खुशियों को|” निशा ने कहा ही था कि सुनकर विवेक के घाव उभर आये, वह तपाक से बोला– “पर यह खुशी ज्यादा दिन कहाँ ठहरीं|” कहकर वह मौन हो गया|

लेकिन मन में तूफान उठ रहा था| लहरों की तरफ बढ़कर लहरों को हाथों से छूकर बुदबुदाने लगा विवेक- “चार दिन बाद ही तो तुमने अपना असली चेहरा दिखाना शुरू कर दिया था|” कनखियों से निशा को देखकर विवेक फिर बुदबुदाया- “चाँद से चेहरे के पीछे छुपे दाग जल्दी ही दिखने लगे थे| छोटा-सा घर तुम्हें कैदखाना लगने लगा था| कमरे की हर चीज तुमको आउटडेटेड लग रही थी| हर दूसरे दिन माँ से तुम्हारी कहासुनी होती, सुन-देखकर मेरे कान पक गए थे|”

लहरें तेजी से उठीं और उसकी आँखों से बहते आँसुओं को जैसे धो गयीं| विवेक का खुद से वार्तालाप जारी था- 'दिल पे पत्थर रख मैं सालभर बाद ही उस पक्की ईंटों के घर को 'रेत का घर' समझ तुम्हें लेकर विदेश आ गया था| सुना था दीवारों के भी कान होते हैं किन्तु वो दीवारें तो मुझे पीछे से आवाज भी देती थीं| लेकिन मैं उस घर पर रह नहीं सकता था| निशा नाम की बेड़ी जो पैरों में पड़ गयी थी| माँ-बाबा का वो निरीह-सा चेहरा आँखों के सामने

अक्सर घूमने लगता था| परन्तु अपनी मन की शांति और माँ-बाबा को परेशानी से बचाने के लिए, मैं तुम्हें साथ लेकर यहीं विदेश में आकर बस गया था|'

लहरें भी उसके दुख को जैसे महसूस कर रही थीं| उनकी रफ्तार भी विवेक के दिल में उठे हलचल के मुताबिक चल रही थीं|

तभी निशा की आवाज कानों में गूँजी- "फिर से किस दुनियाँ में खोये हो विवेक?" विवेक के पास आकर उसकी आँखों में देखते हुए निशा बोली, "मानती हूँ! गलती हुई है मुझसे, बहुत बड़ी गलती हुई है| सबसे होती है, मुझसे भी भरम बश हो गयी| किन्तु समय रहते मैं अपनी गलतियों को सुधारना चाह रही हूँ न| तुम चिंता नहीं करो! मैं अपने उस घर को अब इस रेत के घर की तरह ढहने नहीं दूँगी| उसे अपने प्यार और संस्कार से वैसा ही सजा दूँगी जैसा मम्मी-पापा बसाना और सजाना चाह रहे थे| तुम इतना तो यकीन कर सकते हो न मुझ पर!"

"हाँ निशा, बिल्कुल कर सकता हूँ| मुझे मालूम है, समय ने तुम्हें बदल दिया है| अपनों से दूर, अजनबियों के बीच रहकर अपनत्व के महत्त्व को तुम समझने लगी हो| और रही सही कसर शुभी ने पूरी कर दी है|" अँधेरा भी छाने लगा था| तभी समुद्र से एक लहर जोर से अँगड़ाई लेती हुई आयी और रेत के घर को अपने साथ बहा ले गयी|

घर को टूटता देख शुभी रोने लगी| विवेक के आश्वासन पर कि कल आकर इससे भी सुंदर घर हम तीनों लोग मिलकर बनायेंगे, जिसमें तुम्हारे दादा-दादी का भी एक बड़ा-सा रूम होगा, शुभी शांत हुई|

निशा तुरन्त बात को बढ़ाते हुए बोली, "उस कमरे के एक कोने में दादा जी की मूविंग चेयर होगी| जिसपर झूलते हुए तुम्हारे दादा जी तुमको इंटरेस्टिंग स्टोरीज सुनायेंगे|"

सुनकर वह खुश होकर आँखें मटकाकर बोली, “वाव डैड, सच्ची!”

विवेक ने कहा, “यस, मुच्ची...!”

“इसमें तो दादाजी का कमरा नहीं था| अच्छा हुआ पानी ने तोड़ दिया|” कहकर दोनों की उँगली पकड़कर नन्हें-नन्हें पैरों से बड़े-बड़े डग भरती हुई शुभी घर की ओर जाने लगी|

--०--

कक्षोन्नति

“सिर्फ अस्सी, अनु अंग्रेजी मेअडियम में पढ़कर भी अंग्रेजी में तेरे इतने कम नम्बर!” नेहा ने नाराजगी दिखाते हुए तेज स्वर में कहा|

“मम्मी, आपकी इंग्लिश तो कितनी वीक है! 'इंग्लिश मीडियम' होता है|” अंग्रेजी का शब्द अटक-अटककर वह भी गलत उच्चारण करके बोलना सुनकर अनु तपाक से मम्मी से बोल पड़ी थी|

कुछ क्षण तक तो वातावरण में मीडियम का अन्तःशोर उभरता, डूबता रहा| थोड़ी देर बाद सन्नाटे के बीच अनु ने अपने चेहरे को बायीं ओर घुमाते हुए थोड़ा ऊपर उठाकर माँ की ओर देखा| फिर अपनी तिरछी दृष्टी उनपर डालते हुए दूसरा सवाल दागा, “मम्मी, आप पढ़ने में कैसी बच्ची थीं?” नेहा बिना जवाब दिए विक्की का रिजल्ट देखने में अपनी आँखें गड़ाई रही|

“बताइए न मम्मी, अपनी क्लास में आप तेजतर्रार बच्ची थीं या कमजोर?" बगल में बैठा विक्की दीदी का निरूत्तर पड़ा प्रश्न पकड़कर जिद करने लगा|

“अच्छा सुन, बताती हूँ|” बड़ी मुश्किल से नेहा अपने क्रोध को बेटे के मधुर स्वर के कारण धकेलकर खदेड़ पायी थी|

पुरानी यादों को याद करके मुस्कराती हुई बोली, “बात उन दिनों की है जब मैं चौथी कक्षा में पढ़ती थी| अंग्रेजी विषय तो जैसे अपने छोटी-सी बुद्धि में घुसता ही नहीं था| एक तो सीधे कक्षा चार में पढ़ाया जाना शुरू

हुआ था| उसके पहले तो सरस्वती शिशु मन्दिर में ए-फार-एप्पल भी नहीं पढ़ा था| मेरे लिए तो एक अक्षर पढ़ना भी पहाड़ चढ़ने जितना ही कठिन था| ऊपर से बिना सिखाए-पढ़ाए किताब पकड़ा दी जाती थी| कक्षा में उपस्थित चालीस-पचास बच्चों के बीच टीचर की कुर्सी के बगल में खड़े होकर एक पैरा पढ़ने का आदेश पारित हो जाता था|"

"अच्छा, तभी…!"

"क्या तभी! अंग्रेजी अपने को विदेशी भाषा की तरह हव्वा लगती थी|"

"ओफ्फ-ओ मम्मी! इंग्लिश विदेशी भाषा ही है|"

"देशी लोगों के तो ये तन-मन में समायी है| घर देखो या घर के बाहर देखो, महल में देखो या फिर झुग्गी झोपड़ियों में! जित देखो, उत ही अंग्रेजी पसरी पड़ी है| जो देश में इतना अधिक रच-बस गया हो, वह विदेशी कैसे हुआ भला! अब तो यह अंग्रेजी अपने ही देश की चेरी है|"

"अंग्रेजी नहीं मम्मी, इंग्लिश..! इंग्लिश...! अच्छा छोड़िए, आप टॉपिक मत चेंज करिए|"

"हाँ, तो मैं कह रही थी कि सीधे कक्षा चार में तो अंग्रेजी का मुख देखा था मैंने| इसके पहले अंग्रेजी का ककहरा भी नहीं पता था|"

"अल्फाबेट, इंग्लिश में अल्फाबेट होते हैं मम्मी! यू डोंट नो?"

"हाँ, वही मुई, तेरी अल्फाबेट| अंग्रेजी की टीचर भी तेरी इस इंग्लिशss की तरह बड़ी खड़ूस किस्म की थीं| बच्चों को मारना और उनपर चिल्लाना ही उनका ध्येय था| अंग्रेजी शब्दों के गलत उच्चारण करने पर वह नहीं, बल्कि उनका डंडा बोलता था| सटाक- सटाक!" सिर सहलाते हुए वह सिहर उठी थी| उसे अनुभूति हुई जैसे अभी-अभी अंग्रेजी की टीचर ने उसपर सटाक से डंडा बरसाया हो|

“मम्मी, फिर तो आपको बहुत दर्द हुआ रहा होगा न?” विक्की ने माँ की हथेलियों को अपने हाथों में लेकर सहलाते हुए पूछा|

“हाँ..., बहुत ज्यादा| उस दिन के बाद से तो कक्षा में उनके पैर रखते ही अपनी तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी|” नेहा की बात खत्म होते ही अनु जोर-जोर से हँसने लगी|

“हँस मत!” नेहा ने आँखें तरेरी| “तुम लोगों की तरह जन्म से अंग्रेजी की घुट्टी थोड़ी पीते थे हम लोग| पहले तो जगह-जगह शिशु-मंदिर नाम से स्कूल हुआ करते थे| ये कुकुरमुत्तों की तरह हर गली-मुहल्ले में इंग्लिश मीडियम स्कूल नहीं होते थे| कल तक जितनी दूर लोग लोटा लेके जाते थे, आज उतनी दूरी पर तो ये तेरी इंग्लिश मीडियम की दूकानें सजी हुई हैं|” सुनकर दोनों बच्चों ने हाथ माथे पर दे मारा|

“मम्मा, आप बता रही हो या मैं जाऊँ?” विक्की बाहर खेलने जाने को उतावला होता हुआ बोला|

“खैर सुन, जिस दिन इंग्लिश रीडिंग का पीरियड होता था, उस दिन मैं माँ से यानी तेरी नानी से पेट दर्द या सिर दर्द का बहाना मारकर स्कूल जाती ही नहीं थी| यदि गलती से पहुँच भी जाती थी तो जान हलक में अटकी रहती थी| अपनी बारी न आये, भगवान से प्रार्थना ही करती रहती थी| या फिर भगवान से मनाती कि कोई काम आ जाए और टीचर खुद ही कक्षा में नहीं आएँ| उस दिन जिस दिन की घटना बता रही हूँ, उस दिन तो उनकी पकड़ में आखिरकार आ ही गयी थी मैं| टीचर ने मेरा नाम कक्षा के सामने लगभग ललकारा था! मैं रीडिंग करने के लिए खड़ी हुई तो नाममात्र का जो मुझे आता भी था, वह भी उनके डर से मैं बोल नहीं पा रही थी| इतना अटकी, इतना अटकी...कि क्या बताऊँ मैं तुम दोनों को..!”

“हा, हा| मेरी हिटलर मम्मी, इंग्लिश टीचर से इतना डरती थी?” अनु हँसती हुई बोली|

“हूss, उस समय मेरे किताब पकड़कर गुमसुम खड़े रहने पर दो बार तो कस के फटकार लगाई थी टीचर ने| डाँट खाते ही, जो दिमाग था वह भी घास चरने दौड़ गया| अब तो बोलती ही बंद थी| बड़ी तन्मयता से किताब को बस घूर रही थी, लेकिन अक्षर इधर-उधर धमा-चौकड़ी कर रहे थे| जब सारे अक्षर एक जगह ठहरते, तब तो मैं पढ़ पाती| मगर वे सारे अक्षर तो अपनी जिद पर थे और मैं किताब पकड़े अपनी ही सुरूर में थी| बिलकुल तेरे आमीर खान की उस मूवी की तरह| क्या नाम था उसका, अरे...! तर्जनी और अँगूठे को अर्धचन्द्राकार देकर माथे को क्षण भर रगड़ने के बाद बोली, “‘तारें जमीं पर’! बस बिलकुल उसी बच्चे की जैसी स्थिति अपनी भी थी, तभी खोपड़ी पर उनका डंडा फट से जम गया था|”

“तब तो आप खूब हल्ला मचाई होंगी! टीचरों द्वारा हमारी पिटाई लग जाने पर जैसे हमारे स्कूल में आप हंगामा करके आती हैं|”

“तेरे टीचर ने जब बिना किसी गलती के मारा था, तब विरोध किया था| टीचर बच्चों को थप्पड़-दो थप्पड़ मार नहीं सकता! इसकी समर्थक मैं तो नहीं हूँ| किन्तु उसने बेबात ही विक्की को बुरी तरह मारा था, तुझे याद नहीं है क्या? विक्की ने बिलखते हुए बताया था कि पीटी टीचर ने तड़-तड़ाकर न जाने कितने चाटे जड़ दिए थे उसके गाल पर| जब देखो तब ऐसे ही वह छात्र-छात्राओं को मारते रहते थे| जैसे सामने छात्र का गाल नहीं बल्कि उनका बॉक्सिंग का पंचिंग बैग हो| मुक्केबाजी करने वाले टीचर को छोटे-छोटे बच्चों को ऐसे थोड़ी मारना चाहिए| कहीं कुछ हो जाता तो..! एक बॉक्सर का भारी भरकम हाथ एक मासूम बच्चा थोड़ी झेल सकता है! कान का पर्दा फट सकता था| नकसीर फूट सकती थी| तेरे मामा भी तो बॉक्सर हैं, मालूम है न उन्होंने...”

"मम्मी, टॉपिक पर रहिए न| वे सब किस्से बाद में| पहले यह बताइए कि आपने अपनी टीचर से मार खाने के बाद हो-हल्ला किया था या नहीं?"

"अरे नहीं! तब पापा यानी तेरे नाना का बड़ा खौफ था मेरे मन में| ऊपर से उस खूसट टीचर का डर इतना था कि सिर पर गुल्ला निकल आने के बावजूद मुख से चीख हलकी-सी ही निकली थी, पर आँखों से आँसू! बाप रे! उस समय मेरे आँखों से आँसू बिलकुल झरने-सा बहा था|"

माँ ने जैसे ही बोलना बंद किया कि बच्चे हँसने लगे फिर एक साथ दोनों बोले, "मम्मी, आप इतनी कमजोर थीं पढ़ाई में! और हमें कहती हैं कि हम नम्बर कम लाते हैं!"

"जो सुविधाएँ मैं तुम्हें दे रही हूँ, वह मुझे कभी मिली भी तो नहीं| और हाँ मैं पढ़ने में कमजोर भी थी इसलिए तो सोने पे सुहागा हो गया था| लेकिन तुम लोग न पढ़ने में कमजोर हो, न ही किसी गदहिया स्कूल में पढ़ रहे हो| शहर के सबसे नामी-गिरामी स्कूल में पढ़ रहे हो| कॉपी-किताब किसी भी चीज की कभी कमी नहीं होने दी गयी| और तो और तुम्हारे लिए हर सब्जेक्ट का ट्यूशन भी लगवा रखा है मैंने| फिर भी इतने कम नम्बर क्यों?"

"अच्छा ये सब छोड़िये मम्मी, हम आगे से खूब मेहनत करेंगे| आप बस यह बताइए कि क्लास में कौन-सी पोजीशन आती थी आपकी?" बात कड़वाहट की ओर बह रही थी कि स्वीटी ने घोड़े की लगाम खींचने-सा बात को खींचकर फिर से हलकी-फुलकी यादों के बागीचे में लाकर पटक दिया|

"अरे बच्चों, यह तो मत ही पूछो! कोई औसत दर्जे का छात्र..."

बात काटते हुए तभी बच्चों के पापा कमरे में एंट्री मारते हुए व्यंग्य से बोले- "तुम्हारी मम्मी तो कक्षा में उन्नति करती थीं|"

“मतलब?” विक्की बोला|

“मतलब! अपनी कक्षा में कक्षोन्नति आती थी तुम्हारी मम्मी! ये जिसका मतलब निकालती थीं कि इन्होंने कक्षा में उन्नति की है| जबकि मतलब था ग्रेस मार्क्स पाकर किसी तरह पास हो गयी हैं| और अपने शुभ चरण आगे की कक्षा में प्रवेश करने के लिए बढ़ा लिया है इन्होंने|”

उनकी बात सुनकर पूरे माहौल में शादी में बजते नगाड़े की भाँति ठहाका सस्वर गूँज गया था| वह भी सिर झुकाकर आँचल से मुँह ढ़ककर हँसती हुई बोली- “तब के जमाने में चालीस/पचास प्रतिशत नम्बर ले आना भी इज्जत की बात होती थी| और आज! आज तो पंचानवे प्रतिशत पाने वाला बच्चा भी अपने को रेस से बाहर समझता है| अभी आपने सुना नहीं क्या! नाइंटी परसेंट नम्बर आने पर एक बच्ची ने आत्महत्या कर ली|” अचानक से नेहा फिर से गम्भीर हो उठी|

“देखो, अब तुम बात को कहाँ से कहाँ खींच रही हो|”

“खींच नहीं रही हूँ, इनको समझा रही हूँ| आज के जमाने जैसी सुविधाएँ पहले कहाँ हुआ करती थीं| लड़कियों को पढ़ाने का चलन भी बहुत कम था| न किसी ने मुझको पढ़ाने में रूचि दिखाई न मैंने पढ़ने में| बस शादी-ब्याह के लिए पढ़ी-लिखी लड़की माँगने का दस्तूर सामाजिक दायरे में नया-नया प्रवेश पाया था, सो मैं भी कक्षा-दर-कक्षा प्रवेश पाकर इंटर कर ली थी| लेकिन अब न ऐसी कोई बंदिस है और न ही किसी प्रकार की सुविधाओं की कोई कमी|”

“आप सही कह रहे हैं पापा, मम्मी बार-बार दूसरा ही ट्रेक पकड़कर सीरियस हो जाती हैं, बिलकुल वालीवुड की क्लासिक फिल्मों की करैक्टर की तरह| आप ही देखिए, इन्होंने फिर से दूसरा ट्रैक पकड़ लिया|”

“अच्छा, तो इसी ट्रैक पर रहते हुए तू ही पूछ अपने पापा से, उस जमाने में कोई भी बच्चा सत्तर-अस्सी परसेंट नम्बर भी ले आ पाता था क्या कभी!”

“हाँ नहीं ला पाता था, किन्तु तुम तो...!”

“मेरी कक्षोन्नति तो इस नासपीटी अंग्रेजी और मुई गणित के कारण आती थी|” नेहा मुँह लटकाकर ऐसी मासूमियत से बोली थी कि बच्चे तो बच्चे, बच्चों के पापा भी उसके गले से लिपटकर हँसने लग गये थे| उन्हें हँसता देखकर नेहा बोली, “मैं चाहती हूँ मेरी उम्र तक आने पर तुम दोनों के बच्चे तुम पर नहीं हँसे| इसी लिए चाहती हूँ कि तुम दोनों खूब मेहनत से पढ़ो, मेरी तरह कामचलाऊँ नहीं|”

“माँ, आप यकीन रखिए, हम दोनों ग्रेस-मार्क्स लेकर पास होने की नौबत तो नहीं आने देंगे|” अनु ने अपनी दोनों बाँहों को माँ के गले में डाल हाथ जोड़कर माला की तरह बनाते हुए कहा| नेहा भी अपनी बायीं हथेली को उसके बाएँ गाल पर रखकर हल्का दबाव देते हुए, दाएँ गाल को चूमकर प्यार जताने लगी|

“आप किस तरह के स्टूडेंट थे| आप आईएएस तो यूँ ही नहीं बन गए होंगे?” माँ के कंधे पर झुकी अनु के प्रश्न ने फिर से अपना फन फैला लिया था| लेकिन इस बार निशाने पर माँ नहीं उसके पापा थे|

“हाँ बेटा, यूँ ही मैं आईएएस तो नहीं बना| अपनी मंजिल को पाने के लिए कड़ी से कड़ी मेहनत की| परन्तु छात्र तो मैं भी अवसत दर्जे का ही था| और हाँ, मैं तुम्हारी मम्मी की तरह ग्रेस-मार्क्स लेकर पास नहीं होता था| ठीक-ठाक नम्बर आ जाते थे| और हाँ, न ही मैं उसका अर्थ कक्षा में उन्नति से निकालता था|” हा... हा...

ठहाका एक बार फिर से कमरे का दौरा करने आ पहुँचा था| रिजल्ट सम्भालकर अलमारी में पैक हो चुके थे और बच्चों के मेज पर किताबें खुलने लगी थीं|

--o--

स्त्रीत्व मरता कब है!

जंगलो में भटक-भटककर नक्सली लड़कियाँ थकान से पूरी तरह से टूट चुकी थीं| वे घड़ी भर आराम करना चाहती थीं| अपने साथ चल रही सरगना से बार-बार उखड़ती साँसों के साथ कहीं पर थोड़ी देर ठहरने की विनती कर रही थीं| लेकिन ऊपर से नारियल-सी सख्त दिखती सरगना ने उनकी विनती को अनसुनी करके सबसे ऊँचे टीले तक पहुँचने का आदेश पारित कर दिया था| थक के चूर हुई टीम की सुरक्षा का प्रश्न जो था| असुरक्षित स्थान पर ठहरने का मतलब था आफत को गले लगाना| ऐसी-वैसी जगह रूकते ही थकान से नींद उन्हें अपने पहलू में समेट लेती और नींद लगते ही हो सकता था कि उन सबका एनकाउन्टर कर दिया जाता| डर का भूत हर घड़ी उनके सिर पर सवार रहता था| जितना डर नक्सलियों को पुलिस-कर्मियों से लगता था, उतना ही डर पुलिसवालों को नक्सलियों से लगता था| दोनों के ही डर को नापने का कोई तराजू आजतक नहीं बना कि आखिर डर किसका किससे ज्यादा है| फिलहाल सरगना भारी कदमों से ऐसे स्थान की तलाश में थीं, जहाँ वे सब थोड़ी देर बिना किसी भय के आराम कर सकें|

तभी एक तरफ से संगीत की मधुर तान उनके कानों से टकराई| ओज मिश्रित सुरीली आवाज सुनकर सभी के पाँव पल भर के लिए जड़वत हो गए| किसी वीरान स्थान की ओर बढ़ते उनके कदम न चाहते हुए भी अब मधुर स्वर की ओर बढ़ने लग पड़े| जैसे शहद की ओर मधु-मक्खी खिंची चली आती हैं, वैसे ही वे मधुर ध्वनी की ओर बढ़ते-बढ़ते गाँव के पास आ पहुँची थीं| वहाँ

पहुँचकर एक सुरक्षित टीले पर चढ़कर उन्होंने आवाज की दिशा में अपनी निगाहें दौड़ाईं|

पन्द्रह-बीस मीटर की दूरी पर ही एक पाठशाला में कुछ सुकोमल-सुसज्जित लड़कियों को देख वे सारी नक्सली स्त्रियाँ ग्लानी से भर उठीं| फटी आँखों से उनको ऐसे घूरे जा रही थीं जैसे उन्होंने आज कुछ अजूबा ही देख लिया हो| उधर सजी-सँवरी लड़कियाँ खूबसूरत-सी साड़ी में सुसज्जित होकर संगीत की धुन पर थिरक रही थीं| इधर नक्सली भेष में कालिख पुते चेहरे के साथ वे सभी अपनी स्थिति पर अफसोस कर रही थीं| उनकी फुसफुसाहटें सुनकर सरगना के माथे पर बल पड़ रहे थे| चेहरा धधकते कोयले जैसा लाल हो आया था| उसके माथे की सिलवटें चुगली कर रही थी कि उसके दिमाग में अतीत की कोई भयावह घटना इस दृष्टान्त के समांतर में चल रही है| अचानक से वह झुण्ड से दस कदम दूर जा एक चट्टान पर बैठकर अपने अन्दर चल रहे दिल-दिमाग के युद्ध में शामिल हो गयी| यह तरीका एक प्रकार से उसका एक आसन था, जिसे करके उसे हिम्मत मिलती थी| वरना एक स्त्री का अपने अन्दर उग आए पुरुसत्व के साथ जीना आसान थोड़ी होता है|

इधर लड़कियों को नृत्य करते देखकर नक्सली लड़कियों का मन तरह-तरह से अँगड़ाइयाँ ले रहा था| “देश-भक्ति के गीत पर थिरकती ये युवतियाँ कितनी सुन्दर लग रही हैं न?” उसमें से एक नक्सली लड़की ने प्रश्न किया|

“हाँ, बालों में गजरा, सुन्दर लाल बार्डर वाली झक सफेद साड़ी और गहनों से लदी जो हैं! और तो और देशभक्ति की आभा से इनके चेहरे पर एक अलग ही लालिमा छायी हुई है|” दूसरी ने हुँकारी भरकर उन नाचतीं हुई लड़कियों को विस्फारित आँखों से देखते हुए कहा|

पहली नक्सली लड़की ने फिर से मुख खोला, “और हमें देखो, बिना शीशा-कंघी के, कसकर बाँधे हुए बाल| लड़कों से ये ढीले-ढाले लिबास, कंधे पर भारी-भरकम राइफल!”

चौथी नक्सली स्त्री ने पहली नक्सली लड़की से सहमति जताते हुए कहा, “एक हम सब हैं, गहनों के बजाय दमन कारी अस्त्र-शस्त्र लादे जंगल-जंगल भटक रही हैं| काश हम सब भी ऐसे ही सजधज के...”

वे गीत की धुन पर थिरकती किशोरियों को देखकर आपस में बातें कर ही रही थीं कि तभी सरगना की कड़कती आवाज सुनकर सहम गयीं- “यह सब देखकर ज्यादा मंसूबे मत पालो! जी नहीं पाओगी...यदि मौत से डर नहीं लगता है तो ही इस जंगल से भागने की सोचना| नक्सलियों के बीच से भागने का मतलब है अपनी मौत को निमंत्रण देना|”

“सरगना, क्या आप इन लड़कियों-सी सजना नहीं चाहती हैं?” नयी-नयी भर्ती हुई नक्सली बच्ची ने हिम्मत करके पूछा|

सरगना हुलसकर बोली, “मैं भी तो कभी इन्हीं की तरह हुआ करती थी, सुकोमल-अंगी, खूबसूरत-सी| मुझे नक्सलियों के द्वारा उठाया ही तब गया था जब मैं किसी शादी में बालों में गजरा लगाए डांस करने में मस्त थी| भागो-भागो के शोर के साथ किसी से धक्का लगने के कारण वही गिर गयी थी| चोट लग जाने के कारण रोने लगी थी| चोट क्या थी हल्की-सी खरोंच थी| मगर आज देखो कितनी कठोर हो गयी हूँ, दस दिन पहले गोली से हुआ गहरा घाव भी मेरी आँखों में आँसू नहीं ला पाया| समय ने जाने कितना तो मुझमें परिवर्तन ला दिया, रत्ती-भर भी मैं वैसी नहीं रह गयी जैसे की कभी थी|” घाव के आस-पास सुख आयी पपड़ी को कुरेदने लगी थी|

“छोटे और रूखे बाल, मर्दाने लिबास और भाषा भी| अब तो हम सब में एक भी त्रियोचरित्र गुण नहीं रह गया है! सबसे बड़ा गुण संवेदनशीलता भी

हम सबसे छिटककर परछाई-सी दूर जाकर खड़ी हो गयी है|” चौथी नक्सली स्त्री का डूबता हुआ स्वर सबके हृदय को भेद गया था|

तीसरी नक्सली बाला ने भी अपनी चुप्पी तोड़ते हुए कहा, “जिसे देखो, हमें रौंदकर आगे बढ़ जाता है| इस घने जंगल में जंगली पुरुषों के शिकार बनकर रह गए हैं हम सब| बचपन के देखे हमारे सारे सपने चकनाचूर हो गये| पाँच साल यहाँ नक्सलाइटों के साथ गुजारने के बाद तो अब सपने भी अंकुरित होना भूल ही गये हैं| कहने को कोई अपना नहीं है अब इन हथियारों के सिवा|”

उस नक्सली ग्रुप की सबसे छोटी सदस्य वितृष्णा से भरकर बोली, “ये हथियार भी तो हमारी अस्मिता की रक्षा कहाँ कर पाए, हाँ मासूम लोगों का हत्यारा जरूर बना दिया हमें| हथियारबंद नक्सली पुरुषों के आगे तो हमारे शस्त्र भी नतमस्तक रहते हैं|” शरीर को अपनी हथेलियों से रगड़ते हुए उसके चेहरे की आकृति अजीब ढंग से बदलने लगी थी|

सरगना ने आगे बढ़कर आत्मीयता से उसे अपनी बाँहों में समेट लिया| मायूस होकर लरजकती आवाज में वह उसे अकवार में समेटे हुए ही बोली, “सही कहती है यह बच्ची| अब तो हम सब बदनाम ही हैं नक्सलवादी के नाम से| गाँव वाले भी हम सबसे बहुत ज्यादा डरते हैं| पर वे लोग भला क्या जानें! असल में तो हम सब डरते हैं उन सबसे| उन्हीं में से कोई पुलिस का कुत्ता निकल जाय तो! फिर तो हमारी लाशें बिछी होंगी इस जंगल में| उसी डर का सामना करने के लिए तो हम सब हथियारबंद होकर चलते हैं| उन लोगों से छुप-छुपकर भागना पड़ता है कि कहीं हम पर उनकी नजर न पड़ जाये| हमेशा डर बना रहता है कि कहीं वे हमारी खबर पुलिस तक नहीं पहुँचा दें!”

पहली नक्सली लड़की बोझिल होती वार्ता से व्याकुल होकर बोली, “हाँ, सरकार तो हम सब के खून की प्यासी है ही| वह यह थोड़ी समझेगी

कि हमें फँसाया गया है| बचपन में ही हमारा अपरहण करके, हमें इस दलदल में जबरदस्ती धकेल दिया गया है| कई तो अपनों के ही धोखे का शिकार हुईं, लेकिन नक्सलियों के बीच आने के बाद कर भी क्या सकती थीं|"

"तुम सही कह रही हो| और जब हम पूरी तरह फँस गये, तो इन हथियारों को पकड़ाकर हमें झोंक दिया गया इस खूनी खेल में! हम सबके शौक में थोड़ी शामिल था ये खून-खराबा और लूटमार करना| मगर अब तो ये सब करना जैसे मजबूरी हो गयी है|" तीसरी नक्सली बाला ने बुझे स्वर में कहा|

छोटी नक्सली बच्ची ने फिर से एक प्रश्न उछाला, "आप दोनों इस गाँव के नक्सली खेमे की सबसे पुरानी सदस्य हैं, क्या आपने कभी यहाँ से भागने की कोशिश नहीं की?"

"भागना..! बच्चे भागना इतना सरल नहीं है| यह वह दलदल है जो एक बार धँस गया, फिर वह धँसता ही चला जाता है|" तीसरी नक्सली बाला ने लगभग तड़कते हुए कहा|

"समर्पण करने की तो सोचा ही होगा?" पहले प्रश्न का जवाब पूरा नहीं हुआ था कि दूसरा प्रश्न उछल कर आ गया|

"किया था, तुम्हारी तरह जब छोटी थी| दिल जब-तब घर जाने को मचलता था| नक्सली पुरुषों के अपने ऊपर हुए शारीरिक बर्बरता से टूट चुकी थी| दो बार बच्चा पेट में आया और गिरवा दिया गया| लेकिन...!"

"लेकिन, हुआ क्या था सरगना आपके साथ, आखिर इतनी अधिक खुर्राट स्वभाव की होते हुए भी आपने हथियार क्यों डाल दिया?"

"समर्पण करने के इरादे से भागी थी, मगर पकड़ी गयी| भगाने में सहयोग करने वाली लीडर का नक्सलियों द्वारा बेदर्दी से कत्ल कर दिया गया| वह भयावह दृश्य देखकर हम दोनों सहम गयी थीं| फिर हमको समझाया गया, या कहो कि डराया गया| 'यहाँ से जिन्दा बचकर जा भी पाए तो गाँव वाले नहीं

छोड़ेंगे, वहाँ से भी बच निकलें तो पुलिस तुम दोनों का एनकाउन्टर कर देगी'| बस तब से हमने मन को समझा लिया|" बहुत देर गहमागहमी होती रही, अंततः अतीत की ठंडी फुहार ने वातावरण को शीतलता से भर दिया| आत्मीयता भरे माहौल से प्रभावित हुई सख्त सरगना का हृदय भी मोम की तरह पिघलने लगा था|

इसी का फायदा उठाकर दूसरी नक्सली लड़की ने कहा, "पहले आप दो-तीन महिला सदस्य थीं, अब कुल छह हैं| और पिछली बार गाँव जाने मिला था तो एक पुलिस का जवान मिला था|"

"उसने तुम्हें पकड़ा नहीं?"

"नहीं, उसने समर्पण करने की राह बताई और विश्वास दिलाया था कि सभी समर्पण करने वाले को मुख्यधारा में शामिल कर लिया जायेगा बिना किसी भेदभाव के|"

"तो फिर देर किस बात की सरगना..! आप भी तो चाहती हैं न इस नरक से निकलना...! हमारी तरह इन लड़कियों जैसी सजना-सँवरना|"

सभी के मन की पीड़ा सुनने-समझने के बाद सरगना ने मंत्रणा करके आपसी सहमती से एक कठोर निर्णय लिया| सभी नक्सली लड़कियों ने एक दूजे की आँखों में देखकर उस निर्णय पर अवलम्ब क़दम बढ़ा दिया| धीरे-धीरे सब ऐसे स्थान पर जा पहुँची, जहाँ पर पुलिस वालों की नजर उन पर आसानी से पड़ सके|

वह पंद्रह अगस्त का दिन था, अतः पूरे जोश-खरोश के साथ गाँव वाले आजादी का जश्न मना रहे थे| पुलिस कर्मियों की निगरानी में छात्र-छात्राओं द्वारा रंगारंग प्रस्तुतियाँ दी जा रही थीं| नृत्य-नाटिका पूर्णता की ओर थी कि अपने कार्य को मुस्तैदी से पालन करने वाले किसी पुलिसकर्मी की निगाह उन नक्सली लड़कियों पर पड़ ही गयी, जो बेपरवाह हो मग्न थीं जश्न देखने में| लेकिन वे यह भी चाहती थीं कि पुलिस वाले, या गाँव

में फैले सरकार के मुखबीर उन्हें देखें| वे सब अब खुले आसमान में उड़ने का मन बना चुकी थीं, आजाद पंछी की तरह| यूँ पिंजड़े में कैद होना अब उन्हें किसी भी कीमत पर मंजूर नहीं था|

पुलिस द्वारा गाँव वालों के साथ मिलकर नक्सली लड़कियों को चारों तरफ से घेरकर धर दबोचा गया था| अपने को घिरा हुआ देखकर भी उनके चेहरे पर तनिक भी शिकन नहीं आई थी| यही तो चाहती थीं वे सब की सब| पुलिस अपनी कामयाबी पर फूली नहीं समा रही थी और नक्सली लड़कियाँ मंद-मंद मुस्कराकर सपने बुन रही थीं| उन चंद क्षणों में ही हजारों सपने देख डाले होंगे उन्होंने|

'स्वतंत्रता दिवस के दिन समर्पण या अपने हथियार डाल देने वाले नक्सली, मुख्यधारा में शामिल कर लिए जायेंगे| ससम्मान उन सबके रहने की व्यवस्था की जाएगी| समाज में घुलने-मिलने का सुनहरा मौका दिया जायेगा|' शहर में चीफ-मिनिस्टर के सामने पहुँचने पर जैसे ही उन सबको यह सब ज्ञात हुआ, तो वे सब अपने निर्णय पर गौरवान्वित हो उठीं|

सभी नक्सली लड़कियाँ मुख्यधारा में शामिल होने का मन ही मन जश्न मना रही थीं| बिना किसी साज-शृंगार के कालिख पुते चेहरे पर भी स्त्रियोचित लालिमा इतराने लगी थी| आँखों का भय कहीं कोने में दुबककर बैठ गया था| अब उन्हीं आँखों में स्त्रियोचित हया तैर रही थी| नाचती हुई स्त्रियों के चूड़ियों की खन-खन उन्हें अपनी कलाइयों पर महसूस होने लगी थी| सभी एक दूजे की ओर देखकर मुस्करा पड़ीं| आँखों ही आँखों से इशारे में जैसे कह रही थीं, 'स्त्रीत्व मरता कब है? देखो! आज इतने सालों बाद आखिर पुनः जाग ही गया|'

चीफ-मिनिस्टर के सामने अपने शस्त्र समर्पण करते ही उन्होंने उनके सामने अपने कालिख भरे दिनों को भी जैसे समर्पित कर दिया था| मुख्यमंत्री ने उन सभी स्त्रियों को आदर के साथ साड़ियाँ-साज शृंगार के साथ चूड़ियाँ भेंट कीं| फिर उन सभी के सम्मान में माइक पर चंद लाइनें बोलकर खुद को

भाग्यशाली बताया| उन्होंने भरी सभा में कहा, “मुझे गर्व है इन स्त्रियों पर, जिन्होंने समर्पण करने का डिसीजन लेकर अपनी सुझबुझ का परिचय दिया है| आखिरी पल तक दृढ़ता पूर्वक अपने निर्णय पर अडिग रहीं| नक्सलियों के द्वारा फैलाए गए भय को इन सबने अपने पास फटकने तक नहीं दिया| स्त्रियाँ चाहें तो आखिर क्या नहीं कर सकती हैं| मुझे प्रसन्नता है कि मैं इस सुनहले पल का गवाह बन पाया|”

उनके भटकाव के रास्ते से लौट आने की खुशी मुख्यमंत्री के चेहरे पर ही नहीं बल्कि उन सबके चेहरे पर भी साफ झलक रही थी| बिना किसी संगीत के और बिना नृत्य की किसी भावभंगिमा के उनका पूरा तन-मन थिरक रहा था| उन सबने अपने अंदर पनपे मर्दानेपन को पल भर में ही थपकी देकर सुला दिया था और उनमें स्त्रीत्व काली घनी रात के बाद आये भोर की भाँति अँगड़ाई ले चुका था| थोड़ी ही देर बाद लाल-नीले-पीले परिधानों में सजी-सँवरी वे सभी नक्सली स्त्रियाँ बहुत सुंदर दिख रही थीं..! पायलों की रुनझुन के बीच शर्माती-इठलाती सभागार में जमा भीड़ में वे सभी एक-एक करके खोने लगी थीं|

--०--

प्रश्न उठते रहे

तरु को साथ लेकर माता-पिता रामलीला देखने आए थे| भारी भीड़ को देखकर तरु की माँ निर्मला ने संस्कार से कहा, "चलो लौट चलते हैं|"

"अरे ऐसे कैसे!" कहकर वह भीड़ को चीरता हुआ दोनों का हाथ पकड़े आगे बढ़ने लगा| बढ़ते हुए बोलता जा रहा था, "जानती हो भारत में अब तक तो तमाम तरह के विरोध के बावजूद रामलीला और रावन-दहन होता आ रहा है| दायरा भले सिमट आया है| पहले गली-गली होता था, अब शहर में बस एक-दो जगह होने लगा है| इसी लिए भीड़ अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है|"

"तरु हाथ नहीं छोड़ना बेटा| जिसे रामलीला देखने में घंटो नहीं बिताना है, ये वो वाली बाहरी भीड़ है| मंच के नजदीक पहुँचने पर भीड़ शायद कम हो|" माँ ने चिंतित स्वर में कहा|

रामलीला मैदान में एक बड़े से मंच पर रावण-वध का मंचन चल रहा था| वे पंडाल के नजदीक पहुँचने ही वाले थे कि संस्कार बोला, "कोई विरला भारतीय ही होगा जो रामलीला-मंचन देखने से वंचित हुआ हो, और आगे भविष्य में भी ऐसा होने की कोई खास सम्भावना तो दिखती जान नहीं ही पड़ती| भीड़ को देखकर तुम भी समझ ही गयी होगी! फिर तरु कैसे वंचित रह जाती भला|"

"तो क्या तुम खत्म होते तक!"

“क्यों नहीं, भीड़ की धक्कामुक्की खाते हुए यहाँ तक झक मारने थोड़ी आएँ हैं|”

“मगर खड़े होकर..!”

“एक कुर्सी उधर खाली है, तरु को गोद में लेकर बैठ जाओ| थोड़ी देर में जगह मिल जाएगी, परेशान क्यों होती हो|”

“हर साल तरु को झाँकियाँ दिखाने तक तो ठीक था परन्तु इस बार इसे रामलीला दिखाने की जाने क्यों ठानी!” निर्मला बुदबुदाए जा रही थी|

उधर मंच पर राम द्वारा छोड़े जा रहे बाण से घायल हुआ रावण प्रचंडता से अट्टहास करता रहा| दर्शक दीर्घा में बैठी दस साल की तरु पर इसका गहरा प्रभाव हो रहा था| वह अपलक-काठ सदृश हो मंचन देखती जा रही थी| कुछ कहने को होती तो बगल में स्थान ग्रहण कर चुके पिता शांत रहकर रामलीला देखने का इशारा कर देते|

मंचन समाप्त होते-होते जब अट्टहास करता हुआ रावण वीरगति को प्राप्त हुआ तब उत्सुकता वश तरु ने अपने पिता से पूछ ही लिया, “पापा! रावण मरते समय इतनी जोर से हँसा क्यों?” उसके प्रश्न को सुनकर भी संस्कार ने उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा| वह उसकी उँगली पकड़े निर्मला से बात करते रामलीला मैदान से बाहर की ओर चले चल रहे थे| तरु संस्कार की पकड़ से अपनी उँगली को लगभग छुड़ाते हुए मचल-सी गयी| पिता से अटेंशन पाते ही उसने अपना प्रश्न दुहरा दिया|

“चलो मेला घुमाता हूँ तुमको, रौशनी से नहाया शहर देखना है न तुमको!” वह घिसटती हुई पुनः साथ चलने लगी थी|

“उधर देखो भगवान राम की कितनी सुंदर झाँकी जा रही| झाँकियाँ देखने के बाद हम थोड़ा आगे चलकर स्टॉल पर पाव-भाजी खायेंगे, तरु

को बहुत पसंद है न!” प्रश्नों से जी चुराते हुए तरु को बहलाना चाहा था| वह मचलती हुई माता-पिता के साथ दौड़ने-सी लगी थी|

पाव-भाजी खाने के बाद, वहीं आसपास सड़क किनारे सजी हुई दुकानों से तरु के लिए खिलौने-गुब्बारे खरीदे गये| खिलौने की दूकान पर दो मिनट ठहरकर माँ तरु की पसंद पूछती रही थी| किंतु तरु का चेहरा मुरझाए हुए फूल-सा सिकुड़ा रहा| थोड़ा आगे चलकर निर्मला ने उसे फुसलाते हुए पूछा, “मेरी बिटिया आइसक्रीम खाएगी ?” तरु ने हाँ या न कहने के बजाय उनकी तरफ अपना प्रश्न उछाल दिया, “मम्मी! रावण इतना अधिक शक्तिशाली था, तो फिर इतनी जल्दी मरा कैसे?”

“जल्दी-जल्दी खाओ नहीं तो आइसक्रीम पिघल जाएगी|” उसके प्रश्न का उत्तर न देकर माँ ने बिटिया के हाथों में आइसक्रीम पकड़ा दी थी|

घर लौटकर तरु ने निर्मला और संस्कार के सामने फिर वही सवाल उछाल दिया| संस्कार ने प्यार से कहा, “इस बारे में कल बात करेंगे बेटा! अभी आप मेले से घूमकर आए हैं, बहुत थक गये होंगे न? और हम दोनों भी थक चुके हैं| अब आप अपने कमरे में जाकर सो जाओ|” कहकर उसके पापा ने मासूम के प्रश्न को फिर से प्रश्न ही रहने दिया|

नन्ही तरु के मन में उसका प्रश्न अब भी गुंजायमान था कि आखिर रावण मरते समय हँसा क्यों? अपने कमरे में जाती हुई तरु पलटकर बोली, “मम्मी! कोई मरते समय ऐसे हँसता है क्या?”

“न! कोई नहीं| अब जा, जाकर सो जा| सुबह जल्दी उठना है न|” अपने निढ़ाल शरीर सहित थकी बोझिल होती आँखों को बंद करते हुए निर्मला बोली|

मेले में पैदल घूमकर माता-पिता थके-हारे तो थे ही| क्यों? कब? कैसे मारा गया रावण? जैसे तरु के तमाम तरह के प्रश्नों की तड़ातड़ हुई बौझार से छलनी भी हुए जा रहे थे| तन-मन से पूरी तरह थक चुके माता-पिता नन्ही-सी

बच्ची के मासूम मन की परवाह किए बिना, बड़े प्यार से उसको उसके कमरे में भेजकर खुद भी सो गये|

अलसुबह तरु की चीखने की आवाज से निर्मला उठ बैठी| वह भागती हुई तरु के कमरे में पहुँची| पसीने से तरबतर घुटनों में सिर दिए तरु को बैठी देखकर सहम गयी| आगे बढ़कर निर्मला उसे सीने से लगाती हुई बोली, “क्या हुआ बेटा, कोई बुरा सपना देखा?” थोड़ी देर माँ की छाती से लिपटी हुई तरु सुबकती रही| फिर बोली, “मम्मी! आप कहती रही हैं न कि सुबह के सपने सच होते हैं?”

“हाँ बेटा! बड़े-बुजुर्ग तो यही कहते आएँ हैं!”

“मम्मी, वह रावण...!” उसकी आवाज भय से अब भी अटक-अटक जा रही थी|

“ओह फिर प्रश्नों की झड़ी?” निर्मला बुदबुदाई| वह समझ गयी कि तरु के दिमाग पर कल की रामलीला का दृश्य ही छाया हुआ है| शायद सपने में रावण को ही देखकर वह डर गयी है| तरु को समझाते हुए बोली, “ऐसा क्या देखा बेटा! जो इतना अधिक डर गयी हो तुम?”

सिसकते हुए तरु सिलसिलेवार सपने में देखा गया सारा वृतांत सुनाने लगी, “मम्मी! मैंने देखा कि रावण ने सपने में आकर मुझसे कहा कि ‘मैं क्यों अट्टहास कर रहा था, तुम जानना चाहती थी न! मैं हँसा था क्योंकि मैंने देखा कि उस रामलीला मैदान में ज्यादातर लोग मुझसे भी अधिक गये-गुजरे जीव बैठे हैं| मैंने तो मर्यादा में रहकर सीता का अपरहण किया था, किन्तु वहाँ उपस्थित लोगों की आँखों में मुझे तनिक भी मर्यादा नहीं दिख रही थी| अधिकतर लोग उदंड, असंस्कारी थे|”

“अच्छा! और क्या कहा उन्होंने तुमसे?” उसका पसीना पोंछते हुए माँ ने प्यार से पूछा|

तरु ने भयातुर होकर कहा, "उन्होंने आगे कहा कि ‘अपनी विकराल छवि युवाओं में देखकर मैं पुनः अट्टहास कर बैठा था| मेरी निगाहों में साफ झलक रहा था कि 'हे राम! तुम तो अकेले ही मुझको मार गिराए; परन्तु कलयुग में तो मैं सहस्र रूपों में रहूँगा! और तुम! तुम तब तक रहोंगे ही नहीं| फिर क्या करोगे?’ माँ! वह अहंकार से भरे ललकार रहे थे| उनका स्वर मेरे कानों में ऐसे चुभ रहा था, जैसे शादी का बैंड कोई मेरे कानों के पास आकर बजा रहा हो| वह स्टेज पर जिस तरह से तेज-तेज बोल रहे थे न, वैसे ही सपने में भी बोल रहे थे| उन्होंने आगे कहा कि ‘मैं आज भी हूँ, और कल भी रहूँगा| मैं शाश्वत हूँ! मेरा वध! हा, हा! मेरा वध! कभी नहीं किया जा सकता है राम| जितनी बार मरूँगा, उतनी बार, उसके दस गुना अधिक रूपों में मैं जन्म लूँगा|’

यह सुनकर भगवान राम चिंतित हो गए और उन्होंने अपने धनुष-बाण वहीं रख दिए| विभीषण और लक्ष्मण ने राम को बहुत समझाया, पर भगवान राम को उनमें भी रावण ही दिखने लगा| चिल्ला-चिल्लाकर रावण उनसे कह रहा था, ‘मुझे मारो राम! ताकि मैं कई रूपों में जन्म लेता रहूँ! मेरी संख्या बढ़ती रहे| जैसे-जैसे मैं मरूँगा! वीभत्स रूप में चार से, दस गुना अधिक ताकतवर होकर जन्म लूँगा| राम मारो मुझे, मारो मुझे राम!’ रावण कहकर अट्टहास करता रहा और भगवान राम असहाय से खड़े रहे माँ|” सपने में घटित सारा वृतांत सुनाकर तरु माँ के सीने में सिमट गयी थी| उसके शरीर के रोंगटे खड़े होकर उसके डर की गवाही दे रहे थे|

“मैंने कहा था न कि रामलीला दिखाने मत ले चलो, पर मेरी सुनता कौन है इस घर में|” पति पर नाराज होते हुए निर्मला चिल्लाई| पति किंकर्तव्य-विमूढ़-सा बेटी के पास बैठा रहा|

निर्मला पुनः चीखी, “मेरी सुनी ही नहीं! पीछे ही पड़ गए! चलो, दिखा लाऊँ तुम्हें और तरु को रामलीला| मैंने बचपन में खूब रामलीला देखी है, मेरी बिटिया उससे वंचित क्यों रहे| लो, अब भुगतो!” क्रोध में बोलते समय उसकी

वाणी में कम्पन सहज शामिल हो चुका था| संस्कार अकबकाया-सा बोला, मुझे क्या पता था कि यह लीला की तरह नहीं देखेगी बल्कि उसे अंगीकार करेगी| दस साल की हो चली थी किन्तु रामलीला देखी नहीं थी कभी, तो सोचा थोड़ा-सा दिखा लाऊँ| अपनी परम्पराओं और संस्कृति से परिचय करवा दूँ!"

"मैंने कहा था कि देखने के बाद तुम्हारी बिटिया प्रश्नों की झड़ी लगा देगी, उत्तर देने को तैयार हो तभी चलना, तब तो तुमने बड़े जोश में कहा था 'हाँ क्यों नहीं, अपनी संस्कृति से परिचित कराने से चूकने वाला नहीं हूँ| पूछे चाहे जितने प्रश्न, सभी का उत्तर तथ्य के साथ दूँगा|' जब रास्ते भर प्रश्न पूछती रही तब क्यों मौनी बाबा बने रहे थे तुम?"

निर्मला के क्रोध में अपने तर्क की आहुती देने में संस्कार को कोई लाभ दिखाई नहीं पड़ रहा था| अतः वह तरु को अपने पास बैठाकर प्यार करने लगा| थोड़ी देर बाद सहज स्थिति देखकर संस्कार ने तरु को पुचकारते हुए समझाया, "डरने की बात नहीं है मेरी बच्ची! जो तुमने देखा, वह बस एक सपना है| रावण यानी बुराई के प्रतीक को हम मिलकर मार गिरायेंगे| बुराइयों से डरना नहीं चाहिए, बल्कि खुद में हिम्मत पैदा करके उससे लड़ना चाहिए| जैसे राम-लक्ष्मण लड़ें थे, जैसे सीता लड़ी थीं! सीता की तरह तुझे भी रावण के स्वर के दुगने वेग से प्रतिकार करना चाहिए था न सपने में! फिर देखती तुझसे डरकर वह रावण हँसना भूलकर तेरे सामने मिमियाने लगता| "

"पर मम्मी, रावण तो सब में हैं! कैसे मारेंगे? कितनों को मारेंगे? हम तो कमजोर हैं न? आप तो कहती हैं कि मेरी बिटिया फूल-सी है| फिर पत्थर से कैसे जीत पाऊँगी मैं?" मासूमियत से निर्मला की तरफ देखकर तरु हकलाते हुए बोली|

“बिटिया, फूल भी यदि दृढ निश्चय कर लें न, तो पत्थर में भी सूराख करके जन्म ले लेता है| पत्थर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता|” उसे समझाते हुए निर्मला की आँखें चमक उठी थीं|

“मगर मम्मा, पत्थर तो फूल को कुचल सकता है न! और उसका रूप बिगाड़ सकता है?”

“हाँ, कुचल सकता है! किंतु कुचलने पर भी फूल अपनी सुगंध चारों दिशा में फैला देता है|” साइड टेबल से फूल को मसलकर, उसकी महक को महसूस करने को बोलते हुए माँ ने जवाब दिया|

“यह तो पहले से भी ज्यादा महकने लगा!” बिटिया ने मासूमियत से हँसकर कहा|

“हाँ, हमें भी कष्ट जब मिलता है तो हम इसी तरह पहले से ज्यादा ताकतवर हो जाते हैं| बिना मुसीबत में पड़े हमें अपने अन्दर की हिम्मत का पता ही नहीं चलता है| जैसे बिन मसले इस फूल की सुगंध तुझे पता नहीं चली थी कि इसमें कितनी अधिक गंध छुपी हुई है|” निर्मला ने कहा तो आश्चर्य से मुँह खुला का खुला रह गया था तरु का- “अच्छा..!”

“बिलकुल, ऐसे ही इस पानी को देखो! यह भी बहुत मुलायम और सरल होता है, परन्तु लगातार किसी पत्थर पर पड़ने पर यह पत्थर में छेद कर देता है, समझी? और फिर मेरी बिटिया कमजोर थोड़ी है! वह तो हिम्मत वाली चतुर और सयानी बिटिया है|” गुदगुदी करते हुए संस्कार उसको हँसाने का प्रयास करने लगे|

“मन में जब विश्वास भरकर कोई काम करने की ठान ली जाये, तो कुछ भी असंभव नहीं है मेरी नन्ही कली| जानती है, एक चींटी भी हाथी को मार सकती है और देख रामलीला में भी तो तूने देखा न कि सुकोमल सीता शक्तिशाली रावण से बिल्कुल भी नहीं डरीं| अपनी बात पर अडिग खड़ी रहीं|

उन्होंने रावण के अहंकार को अपने अदम्य साहस से चूर-चूर कर दिया|" माँ ने फिर से उदाहरण देकर अपनी बात को समझाते हुए तरु से जोशीले स्वर में कहा|

संस्कार ने तरु की आँखों में आँखें डालकर कहा, "मेरी बच्ची, रावण इसलिए ठठाकर हँसा था कि इतना ताकतवर होते हुए भी वह अपने अहंकार के कारण मारा गया| समझी, मेरी लाड़ो? बुराई कितनी भी ताकतवर हो, मगर उसका अंत होना निश्चित है| सच्चाई के आगे बुराई क्षण भर भी नहीं ठहर सकती है|" तरु के चेहरे पर विश्वास का सूरज चमकने लगा था| उसको देखकर माता-पिता को राहत महसूस हुई|

खिलखिलाते हुए तरु पुनः बोली, "मम्मी, मैं भी सीता की ही तरह बिल्कुल नहीं डरूँगी, बल्कि लड़कर हरा दूँगी बुरे व्यक्ति को, आने दो अब उनको मेरे सामने| देखती हूँ कितनी शक्ति है बुराई में! ढिशुम-ढिशुम..., ढिशुम-ढिशुम...! ये मारा, वो मारा...!" टेडी उठाकर उसे ही मारने लगी थी वह|

बिटिया में हिम्मत का बीज रोपित हो चुका था| माता-पिता ने खिलखिलाती हुई तरु को सीने से लगाकर संतोष की साँस भरी| एक-दूसरे की आँखों में झाँकते हुए इशारों में बोले कि अब ऐसी गलती वे कभी नहीं दोहराएँगे! इसके छोटे-बड़े सवालों को कभी भी हवा में अनुत्तरित नहीं छोड़ेंगे बल्कि यथा सम्भव हर प्रश्न का उत्तर देंगे|

"मम्मा! सीता की अग्नि परीक्षा क्यों हुई थी?" गले से विलग होकर तरु ने अचानक से सवाल उछाला|

"यह तुम्हें, तुम्हारे पापा बताएँगे, मैं नाश्ता बनाऊँ? मेरी बिटिया को भूख लगी होगी न!"

"सुनो निर्मला, सुनो तो मुझे ऑफिस!" परन्तु निर्मला तो फुर्र से वहाँ से उड़कर रसोई में जा पहुँची थी|

“बताओ न पापा...! और उसके बाद भी लक्ष्मण ने सीता को वन में अकेला क्यों छोड़ दिया...?” पिता के पीछे चलती हुई तरु ने पहले प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा न करके दूसरा प्रश्न भी पूछ लिया था|

“मुझे ऑफिस जल्दी जाना था किन्तु मैं फोन करके कह देता हूँ कि आज जरा देर से आऊँगा|” रसोई में पहुँचकर संस्कार नाश्ता लगाते हुए तरु के प्रश्नों का उत्तर देने लगा था| उसने प्रश्न को प्रश्न रहने देने की गलती पुनःश्च नहीं दोहराई|

--०--

वह लौट आया

"यार अध्ययन! यह पब्जी वाला गेम खेलना अब छोड़ दे तू| देख तो मार्केट में एक नया रोमांचकारी गेम आया है|" साहिल पलंग पर बैठता हुआ अपने रूम पार्टनर से बोला था|

"नहीं, तू खेल! मुझे तो अभी इसी में मजा आ रहा है| पहले इसके भरपूर मजे ले लूँ फिर तेरे उस नए गेम के बारे में सोचूँगा|" मुँह से ठाँय-ठाँय स्वर निकालता हुआ करके गोलियाँ दागने का तरह-तरह से चेहरा बनाता हुआ उत्तर देता जा रहा था अध्ययन| ऐसा लग रहा था कि वह मोबाइल में गेम नहीं खेल रहा है बल्कि असलियत में जैसे दुश्मनों से लड़ रहा है| उसकी भाव-भंगिमा देखकर साहिल उसे अपना आसान टारगेट समझने लगा था|

"अरे देख तो सही! ये दूसरा 'कार सर्फिंग चैलेन्ज' तो एडवेंचर से भरा गेम है| उससे ज्यादा तुझे इसमें मजा आयेगा|" साहिल ने उसे लुभाने की एक बार फिर से कोशिश की|

"तो तू दोनों गेम व्हाट्सएप कर दे मुझे, बाद में देखूँगा|" अपने मोबाइल से ध्यान हटाये बिना अध्ययन ने कहा था|

बिहार से २०१५ में साहिल जब दिल्ली आया था तब तो वह सीधा-सादा लड़का था| जैसे गाँव के लड़के हुआ करते हैं| न ज्यादा किसी से बोलना और न ही घूमना-फिरना| पिता बिहार के ही एक साधारण से

स्कूल में शिक्षक थे और माँ गृहिणी| तीन भाई बहनों में साहिल सबसे बड़ा था| छोटे भाई-बहन बिहार में ही पढ़ाई कर रहे थे| साहिल को जल्दी ही दिल्ली की हवा लग गयी थी और यहाँ आकर मटरगस्ती करने वालों की संगत भी मिल गयी थी उसे| पीजी के उसके रूम-पार्टनर से उसे हर तरह की ढंग-बेढंग चीजों का ज्ञान प्राप्त हुआ था| वह भी बिहार से ही था अतः साहिल की उससे खूब जमने लगी थी| उसकी संगत में धीरे-धीरे साहिल एडवेंचर का शौकीन हो चला था| यहाँ दिल्ली में रहते हुए उसने पढ़ाई में भले प्रगति नहीं की हो, लेकिन लोगों को टोपी पहनाने में दो साल में मानो पीएचडी कर ली थी उसने|

साल भर पहले एक हफ्ते बाद जब वह अपने गाँव से लौटा था तो खबर सुनकर स्तब्ध रह गया था| आस-पास रहने वाले लड़कों से पता चला था कि उसके रूम पार्टनर की मौत ब्लू व्हेल गेम के रुल फालो करने से हो गयी| तब से उसके मन में प्रश्न उठ रहा था कि आखिर एक गेम से ये सब कैसे हुआ! क्या ऐसा सम्भव है कि कोई गेम खेलने में मर जाए! ऐसे सवाल उसके दिमाग में नाचते रहते थे, परन्तु वह खुद उन गेम्स को खेलने से अब बचने लगा था| खुद रिस्क उठाकर रहस्य जानने के बजाय अब वह दिल्ली आए नए-नए लड़कों को अपना निशाना बनाता रहता था| और उन्हें येन-केन-प्रकारेण इन गेम्स की ओर आकर्षित करता था| यही कारण था कि साल-छह महीने में वह अपना रूम पार्टनर बदलता रहता था|

“तुझे पता है अध्ययन? कल सौरभ ‘हाई स्कूल गैंगस्टर-क्रिमिनिल-गैंग’ नाम का कोई गेम बता रहा था|” थोड़ी देर बाद साहिल ने फिर से पासा फेंका|

“सौरभ! वह तो गेम का पक्का कीड़ा है| उधर कोई गेम मार्केट में आता नहीं कि इधर वह अपने मोबाइल में डाउनलोड कर लेता है|” अध्ययन ने हँसते हुए कहा|

“हाँ, गुरु गुड़ रह गया और चेला चीनी हो गया|” साहिल खुद पर ही हँसते हुए बोला|

“हा...हा..! सही कह रहा है तू| वैसे ब्लू व्हेल जैसा एडवेंचर भरा गेम खुद तो खेलता नहीं तू...! बस दूसरों के ही पीछे पड़ा रहता है|

सवाल सुनकर साहिल के सोच के तार तरंगित हो उठे| मैं तो खतरनाक गेम खेलकर बच्चे कैसे आत्महत्या को प्रेरित होते हैं, यह अपनी आँखों के सामने होते हुए देखना चाहता हूँ| इसी लिए तो पहले नवीन, राकेश फिर सौरभ और अब अध्ययन को इस मोबाइल के गेम्स को खेलने की लत लगाई है| अपितु अपने मकसद तक पहुँच नहीं पा रहा हूँ| सौरभ साल भर पहले जब रूम पार्टनर था| तब अपने मोबाइल में पोकीमोन गेम को खोलकर सौरभ के हाथों में अपना मोबाइल देकर गेम खेलने को उकसाया था मैंने| सौरभ जब गेम खेलने का आदी होने लगा तब मैं अपना मोबाइल उसे देने से बचने लगा था|

दिखने में तगड़ा लेकिन स्वभाव से सीधा सौरभ उत्तर प्रदेश के एक छोटे से गाँव का लड़का था| दिल्ली में रहकर मेहनत से पढ़ाई करके पोलिस-ऑफिसर बनना चाहता था| उसके माता-पिता जितना भी खर्च भेज सकते थे, भेजा करते थे| परन्तु गेम की लत लगते ही वह हर बार फोन पर माँ से महँगे मोबाइल की डिमांड करने लगा था| उस दिन जब वह अपनी माँ से बात कर रहा था, तब मैं भी तो वहीं था|

“कित्ते का आयेगा ये तेरा मुबाइल?”

“अम्मा, ज्यादा महँगा वाला नहीं चाहिए| बस बापू से कहकर छ-आठ हजार भी भिजवा देगी तो भी मेरा काम हो जाएगा|”

माँ से बात करके सौरभ को खुश देखकर साहिल ने पूछा “अम्मा मान गयी लग रहा है?”

“हाँ, अम्मा ने कहा तेरे बापू को मनाती हूँ|”

“तेरे बापू मान जायेंगे?”

“अवश्य, अम्मा ने कह दिया तो पत्थर की लकीर समझो|”

“अच्छा! बड़ा दबदबा है तेरी माँ का|” कहकर साहिल ने ठहाका भरा|

साहिल अपनी सोच से अभी उबरा भी नहीं था कि अध्ययन की रूखी आवाज कानों से टकराई -

“देख, तूने डिस्ट्रेक्ट कर दिया न! मैं मर गया| चार प्वाइंट से हार गया बस|” अध्ययन अपना मोबाइल बिस्तर पर पटकते हुए बोला था|

“चार-पाँच महीने से तेरे साथ हूँ और तुझे देख रहा हूँ| मुझे तो तू भी सौरभ से कम एडिक्ट नहीं दिख रहा है| बस मेरे बताये गेम नहीं खेलता है| किसी दिन तेरी मम्मी से शिकायत करता हूँ|”

“कह दे, कह दे! फिर मैं भी तेरे इन नए-नए गेमों के बारे में बता दूँगा आंटी को फोन करके| तेरे उस ‘पोकीमोन गेम’ के बारे में तो जरूर बताऊँगा कि तू कैसे सड़क पर चलते हुए पोकीमोन पकड़ने के चक्कर में रहता है| चार दिन पहले नाली में गिर गया था और कल! कल तो उसी को पकड़ने के चक्कर में तू तो गया था| उस गेम को खेलते हुए तो तेरा सारा ध्यान मोबाइल पर ही रहता है, न सड़क पर आती जाती गाड़ियाँ दिखती हैं और न ही सड़क के गड्ढें|” यह कहते हुए साहिल की धमकी पर अध्ययन ने भी नहले पर दहला दे मारा था|

“अरे यार! मैं तो मजाक कर रहा था| मम्मी से मत कहना, नहीं तो पापा तक शिकायत पहुँच जाएगी और फिर पापा मेरा मोबाइल छीन लेंगे|” साहिल अध्ययन के आगे घिघियाया था|

"हाँ तो तू भी चुप रह, मैं भी चुप रहता हूँ| तू मुझे एक्सपोज करने की कोशिश करेगा, तो मैं भी तो तुझे करूँगा ही न!"

तभी फोन की घंटी बजी| "माँ का फोन है, बिलकुल शांत रहना|" अध्ययन ने साहिल को हिदायत दी|

"हेलो, कैसी हैं मम्मी?"

"ठीक हूँ बेटा, तू कैसा है?"

"बिल्कुल ठीक| अभी थोड़ी देर में कोचिंग जाना है, उसी की तैयारी कर रहा था|"

माँ ने फोन पर समझाना चाहा तो अध्ययन झुंझलाया, "क्या मम्मी! जब देखो तब फोन करके यही कहती रहती हैं आप| बड़ा हो गया हूँ मैं, बच्चा नहीं रहा अब|"

"बड़ा तो हो गया है तू, पर मैं माँ हूँ ना| चलते-चलते लड़खड़ा कर गिरते हुए बच्चों को सँभालना एक अच्छे माँ-बाप की जिम्मेदारी भी तो है|"

"अरे मम्मी! जिम्मेदारी बखूबी निभा ली न आपने| मुझे मालूम है मेरी मम्मी दुनिया की सबसे जिम्मेदार माँ है| अब फोन रखिए मुझे पढ़ाई करनी है|" शहद से मीठे बोल बोलकर माँ को बरगलाने की कोशिश की अध्ययन ने|

"पढ़ाई या गेम?"

"मम्मी! पढ़ाई ही कर रहा था|" अध्ययन का झल्लाया स्वर माँ के कानों में गूँजा तो माँ ने कहा, "बेटा, तेरी भाषा चुगली कर रही है| फिर भी मैं मान लेती हूँ| चार दिन को यहाँ आया था तब देखा था मैंने , तू

घंटो गेम में लगा रहता था| तब भी समझाया था और अब फिर से समझा रही हूँ, गेम खेलना छोड़ दे| पापा को...”

“मम्मी फिर वही बात| बड़ा हो गया हूँ|”

“हाँ बेटा, तभी तो और डर लगा रहता है| अभी कल ही समाचार में सुना कि कॉलेज में पढ़ने वाले छात्र कैसे खतरनाक गेम की गिरफ्त में फँसते जा रहे हैं| कहीं मोबाइल पर साधारण गेम्स खेलते-खेलते तू उन खतरनाक गेम्स के चक्कर में न पड़ जाए!”

“मम्मी, कोचिंग जाना है मुझे| कितनी बार कहा है कि इन फालतू के समाचारों को मत सुना करिए|”

माँ ने फोन तो रख दिया था, मगर भुनभुनाती रही, “कितना अच्छा बच्चा था मेरा| हॉस्टल में भी रहकर आ गया था| न कभी कोई सिगरेट-शराब का नशा किया, न ही नेट की भूल-भुलैया में खोया| बस दोस्तों के साथ लैपटॉप पर यदा-कदा मूवी देखने का चस्का लग गया था उसे| लेकिन अब यह गेम! भगवान! मेरे बच्चे की रक्षा करना|”

आज भी जब माँ का फोन आया तो साहिल अध्ययन के पास ही बैठा था| “उसने चुटकी ली, “तो जनाब! ये कोचिंग की तैयारी हो रही! मुझे तो तेरी किताबें कहीं नहीं दिख रही हैं| तेरे सारे खिलाड़ी दोस्त ऑन-लाइन आ गए न?”

अध्ययन कुछ नहीं बोला, मोबाइल हाथ में लेकर कुछ देखने लगा| अध्ययन वाराणसी का रहने वाला था| घर में माता-पिता और एक छोटी बहन थी| दिल्ली की जमीं पर उसे पैर रखे अभी साल भर भी नहीं हुआ था| लेकिन इस जमीन की हवा का असर उसपर भी होने लगा था|

दिल्ली के मुखर्जी नगर इलाके में फैले पीजी में रहते हुए जगह-जगह से आए बच्चे इन्ट्रेस एक्जाम या यूपीएससी की तैयारी करने में जुटे थे| छोटे से

कमरे में दो-तीन बच्चे एक साथ रहते थे अपनी हैसियत मुताबिक| ज्यादातर बच्चे पढ़ना फिर कोचिंग जाना फिर पढ़ना और खाकर सो जाना| बहुत सीधा-सपाट जीवन जी रहे थे क्योंकि उन सबको जिन्दगी में कुछ करना था| कुछ बच्चे जिन्हें आगे कुछ खास करने की चाह नहीं थी, वे दिल्ली जैसे महानगर में आकर बिगड़ गए थे| जब देखो वो मोबाइल हाथ में लिए गेम या फिर यूट्यूब में झाँकते रहते थे| कुछ तो वीडियो कॉलिंग करके जी जान से लड़कियों के हवाई हमसफर बनने में ही पीएचडी करने पर उतारू थे|

साहिल बहुत बिगड़ा हुआ तो था| मगर बदमाशी में एमए, बीएड किए हुए लड़कों के पदचिन्हों पर वह दौड़ना चाह रहा था| साहिल का रूम पार्टनर अध्ययन भी इसी पगडंडी को पकड़ने की राह पर था| माँ के हिदायतों और बार-बार फोन करके आगाह करते रहने के कारण नवजवानों को बरगलाती पगडंडी से वह छिटककर दूर हो जाता| लेकिन संगत का असर कैसे न सिर चढ़कर बोलता, सो रोमांचक गेम के जाल में मकड़ी की तरह वह भी फँस चुका था| इसी लिए अपनी माँ की हिदायतों को सुनते ही झुंझलाकर पढ़ने की बात कहकर टाल देता था| पास में बैठा साहिल उसे अपने रंग में रंगता देखकर खुशी से फूले नहीं समाता था| वह जाने कितने युवकों को गेम-गुटका-सिगरेट का आदी बना चुका था| लाल जालीदार बनियान पहने वह जब-तब सिगरेट के लच्छे बनाकर उड़ाता हुआ, उन्हें भी ऐसा करने को कहता रहता था| 'हम तो डूबेंगे सनम तुझे भी ले डूबेंगे' कुछ बच्चों द्वारा उसके ऊपर कसा गया यह जुमला पीजी में विख्यात हो चला था|

तभी पीजी में दो कमरा छोड़कर रहने वाला आशु भागता हुआ उनके कमरे में आया|

"तुम लोगों ने कुछ सुना?"

“नहीं तो! क्या हुआ? बतायेगा भी|” साहिल पलंग से उतरता हुआ बोला|

“इतना घबराया हुआ क्यों है?” अध्ययन ने भी सवाल जड़ दिया|

“अरे यार! उस बेवकूफ सौरभ ने आत्महत्या कर लिया|” बाल नोंचता हुआ एक जगह पर ही खड़ा-खड़ा घूम गया|

“क्यों, कब... कैसे..?” एक साथ ही साहिल और अध्ययन बोल पड़े|

लड़के कह रहे थे कि कोई बहुत खतरनाक गेम की लत लग गई थी उसे| उसी गेम के निर्देशों को मानते हुए उसने फाँसी लगा ली|”

“कौन-सा गेम?” बदहवास-सा अध्ययन बोला| नाम याद करता हुआ आशु सिर खुजाने लगा|

“ब्लू व्हेल गेम क्या?” तपाक से गेम का नाम बताते हुए साहिल बोला|

“हाँ… हाँ! वही गेम|”

“धत्त तेरे की...!” साहिल के मुँह से अचानक धीमा-सा स्वर निकला| लेकिन किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया बल्कि सभी बदहवास से सौरभ के कमरे की ओर लपके| वहाँ पुलिस वालों की भीड़ थी| किसी को भी अंदर जाने की सख्त मनाही थी| सौरभ के पिता और भाई रोए जा रहे थे| माँ अपनी छाती पीटती हुई चिल्ला रही थी “मेरा बच्चा तो ऐसन न था! यह तो मैं जब भी फोन करती थी पढ़ता ही रहता था| ये गेम-सेम तो बचपन में भी नहीं खेलता था कभी| न जाने किस कमबख्त ने उसे इसकी लत लगा दी|”

अध्ययन के दिमाग में उसके माँ के कहे एक-एक शब्द तूफान-सा शोर उत्पन्न कर रहे थे| आँखों से आँसू अपने आप ही झर-झर बहे जा रहे थे| वह खुद को सौरभ की जगह और उसकी माँ की जगह अपनी माँ को देख रहा था| उसने अपना मोबाइल जेब से निकाला और वहीं खड़े-खड़े (अपने मोबाइल के अंदर) उसमें पड़े सारे खतरनाक-रोमांचकारी गेम्स डिलीट कर दिया| फिर इशारे से अपने दोस्त साहिल का भी मोबाइल माँगा| मोबाइल लेकर उससे

भी सभी गेम डिलीट करने को हुआ तो उसने अपना हाथ बढ़ाते हुए हल्का विरोध किया| अध्ययन रोते हुए सख्त लहजे में बोला, “तुझे अब भी तेरे रोमांच की पड़ी है| देख तेरे बताये रास्ते पर चलकर उसका क्या परिणाम हुआ! अब से न तू कोई मोबाइल गेम खेलेगा और न ही किसी दूसरे को खेलने के लिए कोई गेम डाउनलोड करने को कभी कहेगा|”

“किंतु..!”

“किंतु...परन्तु...कुछ भी नहीं...| क्या चाहता है तू कि तेरी या मेरी या फिर इनमें से किसी की भी माँ ऐसे ही दहाड़े मार कर रोती चिल्लाती हुई भगवान को कोसें|”

वह दिन था और आज का दिन है अध्ययन अब तक न जाने कितने बच्चों को मौत के रास्ते से लौटा लाया था| बच्चे माँ-बाप की बात तो सुनते हैं, लेकिन उसे खुद पर लागू नहीं करते हैं| बल्कि उनकी तानाशाही मानकर अनसुना कर देते हैं| परन्तु अपने हमउम्र की बात तुरंत मान लेते हैं चाहे सही हो या गलत| गलत बात मानने का नतीजा वहाँ रह रहे ज्यादातर बच्चों ने देख ही लिया था| अब अध्ययन की सही बात को मानने की बारी थी| अपने संगी-साथियों पर उसकी बात का असर होने लगा था| जितनी तेजी से अड्वेंचर के नाम पर खतरनाक गेम ने पाँव पसारा था, उतनी ही तेजी से अध्ययन की समझाइश के कारण उसके पाँव उखड़ने लगे थे|

अध्ययन अपने कमरे में बैठा साहिल के साथ प्रश्न-पत्र हल कर रहा था कि मोबाइल बजा| उसके हैल्लो बोलते ही उधर से माँ की लाड़ भरी आवाज आयी, “कैसा है मेरा बच्चा?”

“ठीक हूँ मम्मी|”

“तेरे पीजी के किसी दोस्त की माँ का फोन आया था मेरे पास| बार-बार मुझे धन्यवाद दें रही थीं वह| उन्होंने कहा कि तूने उनके बेटे की

मोबाइल पर गेम्स खेलने की बुरी लत को छुड़ा दिया| मुझे गर्व है तुझ पर| मेरा बेटा स्वयं तो वापस लौटा ही दूसरे को भी भटकन से लौटा ले आ रहा है| रोम-रोम प्रसन्न हो गया ये सब सुनकर|”

“माँ, तू सही कहती थी| मैं गेम्स का आदी होने लगा था| तुझसे हमेशा झूठ बोलता रहा था| इस गेम के कारण एक दोस्त के साथ हुए हादसे ने सब कुछ बदलकर रख दिया|”

“तुझे सबक तो मिला, भले ही उसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी| परन्तु सुबह का भूला यदि शाम को वापस आ जाए तो, उसे भूला हुआ नहीं कहते हैं बेटा| चल अब फोन रखती हूँ, तुझे पढ़ना भी होगा न|”

“हाँ मम्मी, साहिल के साथ पेपर साल्व कर रहा था|”

मोबाइल रखकर मगन हो गये दोनों पढ़ने में| माँ के चेहरे पर अब सुकून के भाव थे, क्योंकि बेटे के स्वर की सच्चाई को पढ़ चुकी थी वह| हथेलियों में आँचल को पकड़कर आसमान की ओर उठाते हुए उसने भगवान के आगे हाथ जोड़ लिए|

--०--

पिंजरे की चिड़िया

“कभी इस पिंजरे में कैद चिड़िया थी मैं भी| जो फड़फड़ाती रहती थी बाहर निकलने के लिए, बिलकुल इसी चिड़िया की तरह|” सीमा दर्द-भरी आवाज में यूँ दो-चार लाइन बोलती गयी तो वातावरण में थोड़ी देर के लिए पिनड्राप शांति फैल गई| सबके चेहरे की तरफ जब सीमा की नजर गई तो सहज होते हुए वह बोली, “लो नीतू, ‘पिंजरे में कैद पंछी’ पर मैंने काफी कुछ बोल दिया, अब तुम्हारी बारी है|” कहकर उसने टेबल पर रखा पिंजरा नीतू की ओर सरका दिया|

“यार तूने तो डरा ही दिया था| इतनी इमोशनल होकर दर्द-भरी आवाज में जो कुछ भी तूने अभी बोला, तो लगा कि यह सीमा को क्या हो गया भई!” स्वरा उसकी तरफ आश्चर्य से देखकर बोली|

“तुझे तो एक्ट्रेस होना चाहिए था, सीमा| बला की खूबसूरत तो तू है ही| कमाल की अदाकारा भी है भई|” हँसकर नीतू ने स्वरा की बात का समर्थन किया|

“फिल्मों में हाथ नहीं आजमाया होगा! वर्ना जरुर होती| हम लोग फिर यूँ इसे अपने पास नहीं, बल्कि पर्दे पर देख रहे होते|” शिखा ने कंधों से सीमा को धक्का मारते हुए अपनी बाईं आँख दबाकर कहा|

शिखा के यह कहते ही वहाँ पर किटी पार्टी के लिए आई महिलाओं के बीच ठहाकों का दौर चल पड़ा| सबकी हँसी-ठिठोली के बीच सीमा को

उसके अतीत ने झपट्टा मारकर अपनी गिरफ़्त में ले लिया: ‘मेरी खूबसूरती को देखकर ही तो शिकारी ने जाल फेंका था| मैं नादान उसकी मक्कारी को समझ नहीं पायी थी| पापा-मम्मी की अनुभवी नजरों ने शायद उसकी नीयत को बखूबी पढ़ लिया था, तभी तो उन्हें वह फूटी आँख भी नहीं सुहाता था, लेकिन मैं उसके प्यार में पड़कर शिकारी को ही अपना साथी समझ बैठी थी| दिल ने समझा यह ही है मेरे सपनों का वह राजकुमार जो मेरे पंखों को परवाज देगा|

दकियानूसी की जंजीरों में जकड़ा मेरा परिवार मुझे आगे बढ़ने से रोक रहा था| यहाँ तक की मेरी पढ़ाई पर भी रोक लगा दी गयी थी| मेरे पिता ने मेरी गायन प्रतिभा का भी मर्दन कर दिया था| शादी करके संयुक्त परिवार में भेजकर मुझसे मेरा ही परिवार मुक्ति चाहता था| पापा ने सख्त आदेश पारित कर दिया था- ‘किसी भी कोचिंग-क्लासेस में जाने की कोई जरूरत नहीं है|’ कोचिंग के बाहर ही तो पापा ने मुझे सुधीर के बाह में हाथ डाले बात करते पकड़ लिया था| उस दिन मैंने उनकी आँखों में खून उतरते हुए देखा था| पापा तो मुझे घूरते हुए वहाँ से चले गये थे, लेकिन मेरे अंदर भय ने बवंडर मचा दिया था| भीगी बिल्ली की तरह डरी-सहमी मैं उस दिन घर लौटी थी|

सुधीर ने घर के मोड़ पर मुझे छोड़ते हुए मेरे कानों में उसी दिन एक मन्त्र फूँका था, यदि तुम्हें तुम्हारे पापा मारे-पीटें तो तुरंत अपना घर छोड़ देना, मैं तुम्हें लेने के लिए यहीं नुक्कड़ पर खड़ा मिलूँगा| आखिर प्यार करता हूँ मैं तुमसे, बेइंतहा प्यार| तुम्हें तकलीफ में कैसे देख सकता हूँ?’ उसकी प्यार भरी बातें सुनकर मेरी आँखें पनीली हो उठी थीं| मेरी उन आँखों में जीवन की नैया तैरकर पार होते हुए मुझे उसी समय दिख रही थी| थोड़ी देर बाद मैंने पलटकर उसे भयाक्रांत नजरों से देखा था| किंतु उसने आँखों के इशारे से ही खुद पर भरोसा जतलाया था|

उसने कहा था, ‘तुम चिंता न करना| हम भागकर मन्दिर में जाकर शादी कर लेंगे| आखिर बालिग़ है हम दोनों, कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है

हमारा|' उसकी इन्हीं शहद-भरी बातों से चिपक गयी थी मैं मधुमक्खी की तरह| उसके इस कथन को दिल में छुपाकर रख लिया था मैंने, फिर तो मैंने आगा-पीछा सोचा ही नहीं था|

सुधीर ने मेरे मन के अंदर कैद पंछी को परवाज भरने का लालच देकर ही तो जाल में फाँसा था| मैं प्यार में अंधी-बहरी होकर उड़ चली थी उसके साथ| तुरंत मंदिर में जाकर शादी कर लिया हमने| आसमान में अठखेलियाँ करते हुए पंछी जैसे सुनहले सपने मेरी आँखों में तैरने लगे थे| उस दिन उसका भरपूर स्नेह पाकर लगा था कि मैं कोई अप्सरा या फिर स्वर्गलोक की कोई परी हूँ जो धरती पर पापा-मम्मी के घर में गलती से जा फँसी थी|

आठ-दस महीने भी नहीं बीते थे कि मैं आसमान से सीधे धरातल पर धड़ाम से आ गिरी थी लहूलुहान! कितना मारा था सुधीर ने मुझे| मैं उसके घर के बीच बने आँगन में पड़ी तड़प रही थी| सास-ससुर-देवर सब के सब ठहाके लगा रहे थे| मैंने जब अपनी पलकें उठाईं तो अपने चारों तरफ मुझे गिद्ध ही गिद्ध दिख रहे थे|

"अब तुझे घर के बाहर कदम रखते भी देखा तो टाँगें तोड़ दूँगा|" सुधीर के चीखते हुए इन शब्दों से मैं अंदर तक काँप उठी थी| पापा जब बोलते थे तो उनके स्वर में मेरे प्रति उनका डर रहता था, पर सुधीर के शब्द तो बड़े तल्ख और क्रूरता भरे थे| गलती क्या थी मेरी! स्कूटर से ठोकर खाकर चोट लग जाने के कारण उस अपरचित ने मुझे मेरे घर तक ही तो छोड़ा था| मैं तो जानती भी नहीं थी उसे| दर्द से कराहते हुए मैंने सुधीर से बताया भी था, लेकिन वहाँ उपस्थित सारे कान तो मेरे विरुद्ध जा चुके थे| मेरी आवाज मेरे ही कानों से टकराने के वास्ते वापस आई थी| जैसे पहाड़ों से टकराकर कोई ध्वनि वापस आ जाती है|

सुधीर के साथ भागकर शादी करने के दो-तीन महीने बाद ही मुझे थोड़ा-थोड़ा आभास होने लगा था कि मैं अपनी खूबसूरती के कारण इस

बहेलिए की शिकार बनी हूँ| बबूल के पेड़ से रिसते हुए गोंद की तरह धीरे-धीरे सुधीर की सच्चाई भी मेरे सामने रिस रही थी| उस समय मेरे आँखों से प्यार की पट्टी उतरने का नाम ही नहीं ले रही थी| मुझे लग रहा था कि मैं अपनी सुंदरता के बल पर, अपने प्यार से सुधीर को बाँधे रखूँगी| घर की जिम्मेदारी का पूरा भार अपने सिर लेकर घर वालों को खुश रखूँगी| लेकिन होना तो वही था जो लिखा था मेरे भाग्य में|'

मच्छरों की भिनभिनाहट जैसी आवाज उसके कान में गूँज रही थी कि अचानक उसको लगा कि कोई झकझोर रहा है उसे| आवाजें भी अब काले भौरों की तरह भन्न-भन्न होने लगी थीं| "अरे सीमा! कहाँ खो गयी हो भई!" झकझोरते हुए स्वरा पूछ रही थी|

"अपनी ही सुंदरता के जाल में फँस गई है क्या?" नीतू ने उसे छेड़ते हुए कहा|

"क्या हुआ, सबने पिंजरे में बंद चिड़िया के विषय पर बोल लिया क्या?" सीमा ने अचकचाकर कहा था|

"और क्या! तूने किसी का बोलना सुना भी नहीं! तेरे और सुधा आंटी के सिवा सबने कितना प्यारा-प्यारा बोला इस सुंदर-सी चिड़िया के लिए|"

सीमा ने नजरें उठाई और सुधा आंटी के चेहरे पर टिका दी| दोनों की नज़रों ने एक-दूसरे को देखा-परखा| ऐसा लग रहा था जैसे कि दोनों की आँखों ने एक दूसरे की आँखों के टीवी स्क्रीन पर एक दूसरे के जीवन के सारे घाव देख डाले थे|

फिर दूसरे गेम का दौर चल पड़ा था| थोड़ी देर चुहलबाजी के बीच वह भी खेल खत्म हो गया| सब ने अपने-अपने जीतने की खुशी मनाई और कुछ ने अपने हारने पर अफसोस किया| गेम सिमट चुका था| डाइनिंग टेबल पर

तरह-तरह के पकवान सज गए थे| सभी अपने-अपने हाथों में प्लेट लिया और डोंगों में पड़े लजीज पकवानों पर टूट पड़ीं|

चटकारे लेते हुए आवाजें आने लगीं– “वाह स्वरा! तू तो बड़ा लजीज खाना बना लेती है| हम लोगों को तो पता ही नहीं था|" स्वरा मौन हो मुस्कराते हुए सबका धन्यवाद कर रही थी| सब की वाहवाही से वह सेमर की रुई-सी हल्की हो उठी थी| पुलक-पुलककर सबकी प्लेटों में व्यंजन डाल रही थी|

फिरकी की तरह रसोई से डाइनिंग टेबल, डायनिंग-टेबल से सभी दस-बारह लोगों की प्लेट तक एक पैर पर वह नाच रही थी| उसके खाने के साथ-साथ उसकी फुर्ती के भी सब कायल हुए जा रहे थे| उस समय कोई भी उसे देखकर दांतों तले उँगली दबा सकता था| भारी भरकम स्वरा, नीतू और सीमा के छरहरे बदन को भी मात देती दिख रही थी|

“सीमा तुम कुछ क्यों नहीं ले रही हो| तुम भी तो कुछ लो!” कहते हुए स्वरा ने छोले और एक भटूरा उसकी प्लेट में डाल दिया था|

‘उस छह फुट के नवयुवक की प्लेट में छोले देते समय ही तो सुधीर की त्योरियाँ चढ़ गयी थीं|’ सीमा की यादों के गलियारे से चटखती याद रिस पड़ी| 'सुधीर की बर्थडे पार्टी थी| सारा खाना मैंने खुद ही बनाया था| सोचा था घरवाले खुश हो जाएँगे| सुबह से ही मैं रसोई घर में लगी हुई थी| शाम तक कोई भी रसोई में झाँकने तक नहीं आया था|

उस दिन ऑफिस जाते हुए सुधीर ने फरमान जारी कर दिया था, ‘शाम को पार्टी रखी है| मुहल्ले और ऑफिस के लोगों को मिलाकर तीस-पैंतीस लोग आएँगे! इंतजाम कर लेना|’ ‘जी’ कहकर मुस्करा दी थी मैं| लेकिन सुधीर की भौहें धनुष की तरह तनी ही रही थीं| वह माथे पर खिंची लकीरों के साथ ही ऑफिस के लिए निकल गया था|

मैं अक्सर उसको खुश करने के लिए पुराने वाकये को दोहराती हुई उसके चेहरे पर अपनी नजरें टिका देती थी किन्तु प्यार की पींगे भरने वाला वह पुराना वाला सुधीर उसे कहीं भी नजर नहीं आता था|’

“लो सीमा! एक और भटूरा|” सुनकर सीमा यंत्रवत मुस्करा दी| और फिर सुधियों में डूब गई| ‘ऐसे ही सब के पास जा-जाकर मैं भी तो सबको खिला रही थी, एक अच्छे मेजबान की तरह| गहरे हरे रंग की साड़ी में सज-सँवरकर मैं महकती-चहकती हुई मेजबानी में मशगूल थी| अपने दर्द भरे चेहरे को जैसे खिले गुलमोहर से पाट लिया था मैंने| कभी पलाश, कभी चमेली, कभी बेला, कभी सूरजमुखी-सी मैं एक अच्छे मेजबान के रूप में हाजिर हो रही थी हर किसी के पास|

गुलाब मेरा पसंदीदा फूल था, पर गुलाब-सी शख्सियत बनकर मैं सुधीर को कोई कष्ट नहीं पहुँचाना चाहती थी| जबकि सुधीर के दो-तीन दोस्त मेरी खूबसूरती की तारीफ करते हुए मुझे छेड़ चुके थे| इसके बावजूद मैं चुप रही थी| अपने अंदर छुपे काँटें को तब भी मैंने बाहर नहीं आने दिया था| इस डर से कि कहीं सुधीर मुझ पर ही गुस्सा न हो जाए|

“यार सुधीर! बड़ा लम्बा हाथ मारा है तूने तो! इतनी सुंदर लड़की भगा लाया| मुझे भी तो बता वो सारे टिप्स जिससे ऐसी सुंदर चिड़िया मेरी भी जाल में फँस जाए|” उसके ये वाक्य मेरे कानों में लावे जैसे पड़े थे|

फिर जोर के ठहाकों की आवाज के साथ सुधीर के शब्द पिघलते शीशे से सुनाई पड़े थे- “तू छोड़, तेरे बस की नहीं है ऐसी चिड़िया का शिकार करना!” सुनकर भी अनसुना कर गई थी मैं| लेकिन मेरे नैन कटोरे में उस समय आँसू नहीं, अंगारे भर गये थे| मैंने उस स्थिति को भी अपने मुस्कराहट से ढकने का भरसक प्रयास किया था और सफल भी हो गयी थी| बिलकुल वैसे ही जैसे खण्डहर घर की बाउन्ड्री पर बिखरे गुलमोहर के फूल खण्डहर का बिगड़ा स्वरूप ढाप लेते हैं|

थोड़ी देर बाद मुस्कराकर जब मैंने उस छह फीट के चेहरे वाले युवक की प्लेट में भटूरा रखा तो उसके मना करने को बढ़े हुए हाथ से मेरा हाथ छू गया था| मैंने घबराकर झट से हाथ पीछे कर, वहाँ से तुरंत हट गयी थी| घबराई-सी सुधीर के चेहरे पर जब मैंने निगाह फेंकी, तो उसका चेहरा तमतमाया हुआ था| कढ़ाई से निकले हुए लाल भटूरे और उसके चेहरे में उस समय मुझे कोई फर्क नहीं दिख रहा था| उसकी भट्टी-सी दहकती निगाहों से बचती हुई दूसरी ओर चली गई थी मैं|

पार्टी खत्म होने के बाद, सब समेटते हुए कितना थक गई थी| यह तो पता था कि सब करने पर भी सुधीर खुश होकर मुझे अपने गले से तो नहीं लगाएगा, लेकिन उम्मीद बाँध बैठी थी कि आज कुछ ऐसा नहीं करेगा कि मुझे तकलीफ हो! उसके कमरे में घुसते ही जैसे उफनती नदी का बाँध टूट गया हो! उसने मुझसे मारपीट तो की ही, ऊपर से उसने मुझे रौंदा भी|' आह भरी एक चीख के साथ सीमा पुनः वर्तमान में लौट आई|

"क्या हुआ सीमा! भटूरे के भाप से जल गई क्या? मैंने सोचा तुझे फूले-फूले भटूरे दूँ|" स्वरा ने उसके पास आकर कंधे पर हाथ रख प्यार से पूछकर सॉरी कहा| सब लोग खाने-पीने और आपस में बातें करने में मशगूल थे परन्तु खाते वक्त सुधा आंटी की नजरें सिर्फ और सिर्फ सीमा के चेहरे पर आते-जाते भाव पढ़ रही थीं| सीमा की नजर उनसे जब चार हुई तो वह असहज हो उठी|

अपने चेहरे पर मजार पर चढ़ी गोटे से सजी चादर ओढ़कर सीमा ने सुधा आंटी की ओर चोर निगाहों से देखा, फिर स्वरा से कहा- "यार! तूने कितना खिला दिया, मैंने बेख्याली में गिनती भी नहीं की| मेरा पेट बहुत ज्यादा भर गया|"

लेकिन सुधा आंटी की अनुभवी आँखें थीं कि उन्होंने कब्र खोदकर सब कुछ पढ़ लिया था उसके चेहरे पर| खाना-पीना हो गया था| अगली किटी-पार्टी किसके यहाँ होगी, इसकी भी चिट निकल चुकी थी| अगली

बारी सुधा आंटी की थी तो उन्होंने सब को अपने घर आने का निमंत्रण दिया| फिर सब तितलियाँ स्वरा के घर से विदा लेकर उड़ चलीं|

फुटपाथ से अपनी कार तक जाते हुए सुधा आंटी ने सीमा को अकेले खड़ा देख आवाज दी, “चलो! मैं तुम्हें छोड़ दूँ!” दोनों कार में बैठ गईं|

रास्ते में सुधा आंटी बोलीं, “बेटा! तुमने भले ही सबसे छुपा लिया, पर मुझे लगता है कि इस चमकते चेहरे के पीछे दर्द का लावा भरा हुआ है| मैं खुद जख्म सहकर ही ठूँठ बनी हूँ| इसलिए मेरा अनुभव कह रहा है कि तुम उस पिंजरे के पंछी के विषय में नहीं बोल रही थी, बल्कि तुम खुद अपने ही बारे में बोल रही थी|” कहते हुए सुधा आंटी का आश्वासन और प्यार भरा हाथ जब सीमा की हथेलियों पर गया तो सीमा ने अपनी दूसरी हथेली उनके हथेली के ऊपर रख दी| सुधा आंटी ने सीमा की हथेली उठाकर अपनी दोनों हथेलियों में भर लिया था| हथेलियों की गर्माहट से सीमा पिघल गयी|

सीमा के आँखों का काजल जो आँखों की देहरी को बाँधे हुए था, सीमा के आँसुओं के प्रवाह से वह बाँध टूटकर बह निकला| सारी बातें सिसकते हुए सीमा ने आंटी के आगे परोस दी| सुधा आंटी ने पुचकारते हुए कहा, “फिर तुमने क्या किया? उसके बाद भी क्या वह तुम्हें नोंचता रहा?”

“हाँ आंटी, उसके बाद महीनों मैं उसकी कैद में रही| वह जब भी मुझे मारता था या मेरा बलात्कार करता था तो वह जोर-जोर से चीखता था, ‘भटूरे देने के बहाने तू उस लफंगे अजीत पर डोरे डाल रही थी| मुस्करा तो ऐसे रही थी जैसे उसके बिस्तर पर अभी जाकर बिछ जाएगी! साली रंडी कहीं की! आ साली! अब मैं बताता हूँ तुझे!’

न जाने क्यों! और कब अपने सारे दर्द बताते-बताते वह सुधा आंटी के स्पर्श में आत्मीयता पाकर उनकी गोद में लेट गई थी| सुधा आंटी उसके बालों में उँगलियाँ फेरते हुए उसे दुलार रही थीं, बिलकुल अपनी बच्ची की तरह| सीमा के अंदर भावकुता का अथाह सागर उमड़ने लगा|

वह बोली, "उस दिन सड़क पर जब मुझे चोट लगी थी तो सामने से वह आ रहा था| उसने मुझे अपने कंधों का सहारा देकर घर पहुँचाया था| मैं बहुत मना करती रही कि मैं चली जाऊँगी लेकिन उसने यह कहकर कि अब यदि आपने मना किया तो मैं आपको गोदी में उठाकर ले जाऊँगा| आखिर आपके छोले-भटूरे का कर्ज है हम पर| उसके ऐसा बोलते ही मैं चुप लगा गयी थी| मगर उसके बाद जो सुधीर की कांड-लीला होती उस अंदेशे से मैं सहमी हुई थी, और वही उस दिन हुआ जिसका मुझे शक था|" सुनकर उनके अपने पुराने जख्म हरे हो आए| उनकी आँखें लबालब होकर छलक पड़ी जिसे उन्होंने आँचल से पोंछ लिया|

“तो फिर तुम उस नरक से निकली कैसे?” सुधा आंटी ने पिंजरे से निकलने की युक्ति जानने की गरज से पूछा|

“वही छह फुटा नवजवान हनुमान बनकर आया था एक दिन, और मुझे हिमालय समझ उठा ले आया|” कहते हुए उसके दर्द भरे चेहरे पर स्मित मुस्कान फैल गयी|

“वो कैसे?” आंटी ने जिज्ञासा जतलाई|

सीमा ने बताया, "वह सुधीर को पूछता हुआ उस दिन घर आया था| मैंने ही दरवाजा खोला था| दिन में भी बिस्तर पर मेरी बर्बादी का जश्न मनाकर सुधीर घर से दस मिनट पहले ही निकला था| बहुत मारा था उस दिन भी उसने मुझे| कारण बस इतना था कि दिन में मैंने बिस्तर पर जाने से मना कर दिया था| अजीत डॉक्टर के पास ले गया था| रास्ते में ढेरों बातें हुई और मुझे लगा मेरा सच्चा प्यार तो ये है, सुधीर तो जवानी के जोश में हुई मेरी गलती थी| मेरी तरफ से हल्का-सा इशारा पाते ही वह उस नरक से निकाल लाया मुझे|”

“इतना कुछ होता रहा तुम्हारे साथ और तुम सब सहती रही! मायके क्यों नहीं चली गई बेटा ?”

“मैं किस मुँह से माँ-बाप के पास जाती आंटी, उन्होंने तो कह ही दिया था कि अब से तू हमारे लिए मर गई है| हम लोगों के जीते जी इस घर में अपनी शक्ल नहीं दिखाना| मेरे लिए तू आज से ही मर चुकी है|”

“तुम उनसे अपनी तकलीफ बताती तो, शायद वे तुम्हारे घावों का मरहम बनते! आखिर वे तुम्हारे जन्मदाता थे|”

“आंटी! मेरा घर आ गया|” सीमा कार रुकवाते हुए बोली|

“घर तो बहुत ही खूबसूरत है तुम्हारा!”

मुस्कराकर सीमा ने कहा- “आइए आंटी! अंदर से दिखाती हूँ, मैं आपको अपना घर| और चाय भी पिलाती हूँ| चाय का समय भी तो हो ही रहा है|”

आंटी ने मना नहीं किया और उसके पीछे-पीछे घर की तरफ चल पड़ी| घर में प्रवेश करते ही उनके सामने सजीला नौजवान खड़ा था| स्मार्ट-लम्बा-चौड़ा और सुंदर! उसकी जितनी तारीफ की जाए कम थी| वह आसमानी नीली वर्दी में और भी जँच रहा था| “आंटी! इनसे मिलिए| ये हैं उस दूसरे पिंजरे से मुझे आजाद करने वाले एअर-ऑफिसर अजीत|”

“बड़ी भाग्यशाली हो जो तुम्हें पिंजरे से आजाद कराने वाला इतना स्मार्ट शुभकांक्षी मिला| सबकी किस्मत ऐसी नहीं होती है बेटा|” अजीत ने सम्मान के साथ उन्हें अभिवादन किया और अपनी ड्यूटी पर जाने को हुआ| “खुश रहो!” अनायास ही सुधा आंटी के हाथ अजीत को आशीष देने को उठ गये| सीमा अजीत को विदा करके चहकती हुई किचेन की ओर जाने लगी तो सुधा की निगाहों ने उसका पीछा किया और होंठ बुदबुदा उठे, “मैं तो पिंजरे में जीवन भर रह ली पर अब अपनी बहू के लिए मैं वह घर पिंजरा हरगिज नहीं बनने दूँगी!”

चाय बनाकर सीमा ला चुकी थी| चाय पीने के बाद चलते समय सुधा आंटी ने कहा, “चाय भी बढ़िया बना लेती हो| कभी मेरे घर आना, तुम्हें एक

गुमसुम रहने वाली चिड़िया से मिलाना है| कदाचित वह भी तुम्हारी तरह चहचहाने लग पड़े|" सीमा को आशीष देते हुए वे कार की ओर बढ़ गयीं|

--०--

पीढ़ियों का अंतर

घर से लम्बे सफर पर निकली विभा दिल्ली शहर की सीमा तक तो कार में मूर्तिवत बैठी थी| जैसे कि शोकेस में किसी स्टेच्यु को बिठा दिया गया हो| लेकिन दिल्ली बार्डर पार करते ही वह सचेत हो उठी| कार का साइड मिरर इस समय उसके लिए किसी बायोस्कोप से कम नहीं था| उसकी बड़ी-बड़ी आँखें साइड मिरर से बाहर ही टकटकी लगाए हुए थीं| कार धड़धड़ाती हुई सुनसान सड़क पर सरपट दौड़ी जा रही थी|

दिल्ली बहुत पीछे छूट चुका था| अचानक सीमा आम के पेड़ों पर लटकते गुच्छों को देखकर बच्चों-सी उछल पड़ी थी “अहा, आम का बगीचा! आज भी फलों के घने बागान अस्तित्व में हैं! हमें तो लगा था कि शहरों की तरह गाँवों को भी अब विकास ने अपनी चपेट में ले लिया होगा! देखो तो अर्पण, पेड़ आम के गुच्छों से लदे पड़े हैं|” शहर से गुजरती हुई कार के साइड मिरर से बाहर झाँकती हुई विभा की आँखों में अब तक सूनापन झलक रहा था, तत्क्षण उनमें रौशनी चमक उठी थी| जैसे कि अँधेरे आकाश में अचानक से पूर्णिमा का चाँद चमकने लगा हो| गाड़ी में बैठे अर्पण को बाहर की दुनिया से कोई सरोकार नहीं था| वह तो अपने मोबाइल में गेम खेलने में व्यस्त था| किन्तु विभा अब बायोस्कोप से देखना छोड़कर बड़े से परदे से बाहर का नजारा लेना चाहती थी| अतः वह अपनी तरफ के साइड के शीशे से बाहर देखने लगी थी| बीच-बीच में शीशा खोलकर बाहर की हवा लेने लगती| उसका रोम-रोम पुलकित होने लगा था| वह दोनों हाथ कभी बाहर करती, तो कभी अपना सिर बाहर निकालकर ठंडी हवा मुँह में भरने लगती|

उसको देखकर अर्पण ने कहा, “मम्मा, आपको देखकर लग रहा है, जैसे अभी-अभी जेल से कोई कैदी फरार होकर बाहर की दुनिया में निकला है|” बेटे के चुटकी लेते ही उसने तुरंत सिर अंदर करके शीशा बंद करते हुए बोला, “आजकल इन्सान बड़े-बड़े शहरों में कैदी ही तो बन के रह जाता है| तुम्हें यदि ऐसा लग रहा है तो यही समझ लो|”

बागीचा फिर से दिखा तो वह ड्राइवर से बोली, “अरे ड्राइवर, गाड़ी रोको| देखो अर्पण, आम वाला वह पेड़ तो महज चार फुट का ही दिख रहा है| उससे आम को अपने हाथों से तोड़कर खाया जा सकता है|” उसने अर्पण को जागृत करते हुए बोला था| अर्पण की घूरती आँखों को नजरअंदाज करके वह पुनः बोली, “यह सोचकर ही मेरे मुँह में पानी आ गया| और आम को तोड़ने पर डंठल से जो भीनी-भीनी-सी खुशबू निकलती है न, वह तो मेरे मन-मस्तिष्क में आकर तिरोहित ही हुई जा रही है| उस खुशबू को महसूस किए भी जैसे सदियाँ बीत गईं|” चटखारा लेते हुए कुछ इस तरह से उसने बोला कि अमिया का खट्टापन महसूस करके जैसे उसके मुँह में पानी आ गया हो और वह उसे च्च करके अंदर की ओर निगल रही हो|

“अरे ड्राइवर, गाड़ी को रोको भई! तुमने सुना नहीं क्या! मैंने गाड़ी को बाग के किनारे रोकने को बोला था| चलो, बैक करके गाड़ी को पीछे लो|” ड्राइवर से ऊँचे स्वर में बोली थी वह|

“मम्मी, इट्स बैड मैनर्स! किसी के बागीचे से आम तोड़कर खाना अच्छी बात नहीं है|” अर्पण ने अपनी चुप्पी अचानक तोड़ी|

“अरे बेटा, बागीचे में लगे पेड़ों से फल तोड़कर खाना एक तरह का एडवेंचर है, ये बैड मैनर थोड़ी होता है| कंक्रीट के बागीचों में रहने वाले अब तुम सब लोग यह कैसे जानोगे भला! वैसे अभी पापा साथ में होते और वे यदि आम तोड़कर लाने को कहते तब तो तू तुरंत सुन लेता|”

“पापा को छोड़िए, अभी तो साथ में नहीं हैं न| और हाँ, ऐसा कोई एडवेंचर नहीं करना, जिससे आपकी रेपोटेशन खराब हो| आप खुद फूल-पौधे नहीं तोड़ने का पाठ हमें सिखाते-सिखाते अचानक से आज ये सब कैसे भूल गयीं? इन पेड़ों की कतारों को देखकर! या फिर पेड़ों पर लटकते हुए उन आमों को देखकर?”

माँ से बोलने के बाद अर्पण ने ड्राइवर की तरफ देखकर बोला- “चलिए ड्राइवर अंकल, आगे कोई मार्किट पड़ेगा, वहाँ गाड़ी रोक दीजियेगा|”

ड्राइवर भी जैसे इस आदेश के इन्तजार में था| उसने तुरंत धीमी हो चली कार को सड़क के चौड़े से सीने पर दौड़ा दिया| अब कार फिर से सड़क की छाती पर सरपट दौड़ रही थी| और इधर विभा बिसूरती हुई अतीत के गलियारे में दौड़कर बार-बार वापस आ जा रही थी|

“बचपन में हम सब भाई-बहनों ने मिलकर कितनी ही बार बागीचों की सैर करते हुए आम तोड़े हैं! भरी दोपहरी में आम के बगीचे में छुपते-छुपाते घुस जाते थे| माली काका भोजन करके अलसाये हुए नींद की आगोश में होते थे और हम सब पेड़ पर| जानता है, पत्थर फेंककर आम तोड़ने से भी हम नहीं चूकते थे| पत्थर आम पर लगता न लगता लेकिन न्यूटन के नियम के तहत कभी-कभी माली काका पर जा धमकता| उनको चोट लगती तो वह नींद से अकबका के उठते और अपनी धोती सम्भालते हुए हम सब के पीछे दौड़ पड़ते| और हमारी ढिठाई देखो, हम दूर खड़े हो उनको चिढ़ाते हुए इधर-उधर दौड़कर छकाते फिर उनकी आँखों से ओझल हो जाते थे! हम बच्चों का रोजमर्रा का ही ये काम था|”

कहते हुए दशकों पहले का रोमांच उसके चेहरे पर उतर आया था| काले चश्मे से झाँकती उसकी चमकती आँखें इस बात की गवाही दे रही थीं|

“बचपन में कितने ही बार आम-जामुन तोड़कर हमने खाए हैं, तुम्हें पता है? तब तो खरीदकर खाना जैसे स्वभाव में ही नहीं था|” अचानक से वह

अर्पण की ओर चेहरा घुमाकर बोली कि लगा जैसे उसने अभी-अभी कई आम तोड़कर अँजुली में भर रखे हों|

“आपके बचपन में आपके आसपास उपवन-ही-उपवन थे| इसलिए आपने फल तोड़े हैं और मैंने…?”

अर्पण की आँखें इस वाक्य के साथ ही तिरछी हो गयी थीं| चेहरे पर व्यंग्यात्मक लकीरें खींच आयी थीं| उसकी ओर देखकर सीमा को लगा कि वह सवाल नहीं कर रहा, बल्कि उसपर ही कटाक्ष कर रहा है| हृदयतल तक अर्पण का वह एक वाक्य बबूल के काँटों-सा चुभ गया था| उसकी आँखों के सामने पीछे छूट गयीं गगनचुम्भी इमारतें दृष्टिगत होने लगी थीं| अर्पण के स्कूल की लग्जरी सुविधाएँ उसको मुँह चिढ़ाती हुई अब उसके सामने चित्रवत हों उठी थीं|

ऐसा नहीं है कि वह जिस सोसायटी में रह रही थी, वह हरियाली विहीन थी| लेकिन फलों के पेड़ तो क्या! वहाँ के आसपास से नार्मल पेड़-पौधे भी नदारत थे| सारी हरियाली या तो गमलों में समा गयी थी, या फिर घास के रूप में चुभ रही थी| पेड़ के नाम से भी छोटे-छोटे नीम-कनेर या मोरपंख ही कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होते थे| अर्पण को तो पेड़ों के विषय में नहीं ही पता था, न ही वृक्षों की पहचान थी उसे| लेकिन बीस साल से विभा भी इस सोसायटी में रहकर आम-कटहल के पत्ते किस आकार-प्रकार के होते हैं भूलने लगी थी| वह तो भला हो स्कूल टीचर का, जो गर्मी की छुट्टियों में कोई न कोई ऐसा प्रोजेक्ट दे देती थीं, जिससे पशु-पक्षियों-पेड़ों के विषय में जानकारी ताजा होती रहती थी| अर्पण को पढ़ाते हुए गूगल याद दिलाता रहता कि किस पशु-पक्षियों-पेड़ों का क्या आकार-प्रकार होता है|

कार रफ्तार से आगे बढ़ती जा रही थी और उसी रफ्तार से वह यादों में खोती जा रही थी| उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि प्रकृति की सीमा तय करते हुए, इन होती प्रगति के लिए वह किसे दोष दे| कल को क्या इन

बचे हुए खेतों में भी अनाज के बजाय कंक्रीट के दरबे नुमा फ्लैट लहरायेंगे! गलती अर्पण की भी तो नहीं है! बच्चा है, यदि शुरू से ही खेलने के लिए रोका गया है, तो वह तो बोलेगा ही| गलती हम सबकी है| इस सदी के हम मानव ही तरक्की पसंद हो गये हैं| बस खुशियों को डेबिट करवाकर तरक्की क्रेडिट करते जा रहे हैं| बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रकृति का भविष्य अंधकारमय करते ही जा रहे हैं| हम सबका मन-मस्तिष्क तकनिकी विकास और सुविधाओं के पीछे भाग रहा है| हमारी इच्छाएँ मृगमरीच-सी हो रही है| और बिन समझे-बुझे हम बस भागे जा रहे हैं उसी के पीछे|" ओवरटेक से सँभलते हुए अचानक से कार न मुड़ती तो शायद विभा अपनी पीढ़ी को कोसती ही रहती|

प्रयागराज शहर के मुहाने पर ही आम-अमरुद की ठेलें दिखीं, लेकिन विभा ने खरीदने की ललक नहीं दिखायी| रास्ते में कई बार किस्म-किस्म के फल लिए फलवाले दिखे| लेकिन विभा का मौन नहीं टूटा था और न ही मुख में पानी आया था| शायद वह मन में उमड़ते मंथन से अपने दिमाग और दिल को अलग नहीं कर पा रही थी| बेटा तो कटाक्ष करके मोबाइल में व्यस्त हो गया था| किन्तु वह कार की खिड़की से बाहर झाँकती हुई ऊहापोह में ही रही| 'गलती किसकी' सवाल के अनुत्तरित उत्तर पाने का प्रयास करती रही| कभी-कभी विभा भी खिड़की की तरफ की हुई अपनी गर्दन सीधी करते हुए दाई ओर करके अर्पण के मोबाइल में भी झाँक लेती थी| किन्तु वह बोलती कुछ नहीं, थोड़ी देर बाद फिर से पीछे छूटते पेड़-पौधों और खेतों को साइड मिरर के बायोस्कोप में देखने लगती थी| वह जानती थी कि गेम के बीच में बोलना मतलब है कि अर्पण को हराना| छह-सात साल की उम्र से ही वह उससे सुनती आई थी, 'मम्मी, आपने टोंककर हरवा दिया न मुझे'| 'मैंने क्या किया' उसके बोलते ही अर्पण क्रोध दिखाता हुआ कहता कि 'आपके बोलते ही माइंड डाइवर्ट हो जाता है और मैं हार जाता हूँ'|

अब तो वह शैशवावस्था से किशोरावस्था में प्रवेश कर चुका था| उसकी दिनचर्या में पढ़ना-बस-पढ़ना शामिल था और पढ़ने से ऊब जाने पर मोबाइल

में गेम खेलना| टोंकने पर कहता ‘इससे दिमाग फ्रेश हो जाता है| नीचे भी जाकर क्या ही खेलूँगा और किसके साथ’! लूडो, शतरंज, हाकी, क्रिकेट सभी खेलों का एक माहिर खिलाड़ी था वह| मगर मैदान में नहीं, सिर्फ मोबाइल में| सफर के दौरान माँ-बेटे ने दो चार पल ही बातें की होगी| माँ बाहर के दृश्यों को देखकर यादों के समुन्दर में डूब-उतरा रही थी और अर्पण मोबाइल में|

आज विभा लगभग दस-बारह साल बाद अपने छोटे बेटे अर्पण को साथ लेकर दिल्ली से प्रयागराज में स्थित एक छोटे से गाँव में जा रही थी| वह छोटा-सा गाँव उसके पिता का गाँव था| पिता ही गाँव गिरावँ कभी-कभार जाते थे तो भला वह जाकर आखिर क्या करती| अब पिता रिटायर हो चुके थे| परिवार की शादी-ब्याह में वे देहात जाने लगे थे| कजिन भाइयों की शादी के निमंत्रण मिले थे| खुशियों के अवसर पर पिता ने भी विभा को कई बार गाँव से बुलावा भेजा था| किन्तु वह अपनी व्यस्तता के चलते नहीं जा पायी थी| भतीजी की शादी में उसने सोचा कि बेटे अर्पण को जरा गाँव-देश से परिचित कराया जाय| आखिर जड़ तो सबकी गाँव ही है| शाखाएँ भले गगनचुम्बी हो जाए, परन्तु जड़ से अलग होकर रहना भला कैसा! शायद उसमें आमूलचूल परिवर्तन न सही, किन्तु आंशिक परिवर्तन आ ही जाए!

जब-जब प्रयागराज में रहते हुए वह किसी शादी-ब्याह में छोटे-सी उस बस्ती में जाती थी, तो खूब मजे करती थी| उसकी गाड़ी जैसे ही प्रयागराज शहर को लाँघकर गाँव की पगडंडी की ओर बढ़ने लगी थी, वह भी अतीत की यादों में डूबने लगी थी|

बेटे ने आवाज दी “मम्मी, कहाँ खोई हैं? पावर बैंक दीजिए, मेरे फोन की बैटरी जा रही है|”

“सफर के दौरान आम तो नहीं तोड़ने दिया, किंतु अपने गाँव के पेड़ों में लटकते आम तो तोड़ सकती हूँ न!” पर्स में से पावर बैंक निकालकर देते हुए विभा ने अर्पण के मन के भाव को समझना चाहा|

“मम्मी, आप बच्ची हो क्या! जो पेड़ पर चढ़कर पहले की तरह आम तोड़ लेंगी! अब आप ओल्डेज कैटगरी में आ गयी हैं|”

“तो क्या तू तोड़ेगा मेरे लिए...?” उत्साहित होकर उसने पूछा|

“मैं...? नहीं, नहीं! मैं बन्दर थोड़े हूँ, जो इस डाल से उस डाल पर उछलता हुआ आम-जामुन तोडूँगा!”

“तो क्या, मैं बचपन में बन्दर थी!” सुनकर ड्राइवर भी फिस्स से हँस दिया|

“नहीं मम्मी, तब की बात और थी|”

“अच्छा, ये बता! गाँव में क्या-क्या करेगा? तालाब में तैरेगा या फिर तालाब में खिले कमल को डुबकी लगाकर तोड़ेगा... जैसे हम तोड़ा करते थे?”

“तालाब..., ओह-ओह मम्मी, तालाब के गंदे पानी में मैं तैरूँगा!”

“आह, तुम बच्चे भी ज्यादा ज्ञानी हो गये हो| जानते हो जब मैं छोटी थी और कभी मम्मी संग गाँव आती थी, तो तालाब में सुबह-शाम डुबकी लगाने से बाज नहीं आती थी| मम्मी कितना मना करती थीं पर कूद जाती थी पानी में| जानता है एक दो बार तो भैंस पर बैठकर मैंने तालाब को पार भी किया है| अहा कितना मजा आता था|” अर्पण को बताते हुए विभा के चेहरे पर जैसे उषाकाल का सूरज छा गया था|

“ठहरे गंदे पानी में, कैसे...?”

“क्यों, तेरे स्विमिंग-पूल का पानी गंदा नहीं होता है क्या..?” उषाकाल का सूरज अचानक मध्यमा का सूरज हो गया था|

“नहीं, बिलकुल नहीं, स्विमिंग-पूल का पानी हमेशा साफ-सुथरा होता है| यदि गंदा होता तो कोई दो-तीन हजार देकर स्विमिंग करने क्यों जाता..!”

“कैमिकल वाला पानी साफ और जो प्रकृति-प्रदत्त पानी है वो गंदा...! वाह रे बेटा, सही जा रहा है| चल कोई नहीं, मत नहाना तुम| और कुछ कर लेना! कई तरह के गेम गाँव की पहचान हैं, उन्हें ही खेल लेना| गिल्ली-डंडा, गेंद-तड़ी, चिर्री-पाती|”

“ये सब किस तरह के गेम हैं| मैंने तो कभी इनका नाम भी नहीं सुना...|”

“छुपम-छुपाई तो सुना है ना! वह ही खेल लेना|”

“मम्मी, अब मैं बड़ा हो गया हूँ| भैया जबसे होस्टल गया है, नीचे जाकर जब भी सोसायटी में खेलता था, तब आप डरती थी कि कोई उठा न ले जाएँ| हमारी गेंद से किसी के कार या खिड़की का शीशा न टूट जाए!”

“हम्म...”

पुनः एक चुप्पी-सी छा गयी थी| किन्तु कार में बैठे तीनों शख्स के मन के अंदर कोलाहल मचा हुआ था| अचानक विभा ने ही शांति भंग करते हुए कहा, “नाना के घर से नहर तक दौड़ तो लगा ही सकता है!”

“ओफ्फ-ओ मम्मी, मैं ऐसा कुछ भी नहीं करने वाला| आप मुझे पावरबैंक दे देना बस| मैं मेरे मोबाइल पर सारा कुछ कर लूँगा| मैंने कई गेम डाउनलोड किए हैं, कई मूवी भी हैं| और फ्रेंड्स सीरियल भी पेन-ड्राइव में सेव है| दो किताब भी लेकर चला हूँ| मैं तो एक हफ्ते आराम से काट लूँगा| आप अपना देखना कि कैसे अपना समय काटेंगीं|”

“हुँह…|”

“अब इस एज में तो गेंद-तड़ी, चिरी-पाती…! व्हाट्स इवर..! आप ये सब तो करेंगी नहीं!” सुनकर विभा के साथ ड्राइवर भी हँस पड़ा था|

गाँव आ पहुँची थी गाड़ी| छोटी बगिया में खड़ा महुआ का पेड़ जिसपर वह धड़ल्ले से चढ़-उतरकर चिर्री-पाती खेलती थी, वह अपनी बदहाली पर आज रो रहा था| “दोपहर में यह जगह हम बच्चों से गुलजार हुआ रहता था और अब ये जर्जर बचे-खुचे पेड़ भी जैसे बूढ़े होकर कांति खो चुके हैं| बुढ़ापे में इन्सान ही नहीं पेड़-पौधे भी अकेले हो जाते हैं| और इंसानों की तरह ही बिन देखभाल के जर्जर होकर कालान्तर में ठूँठ ही अवशेष में बचते हैं|” जामुन का पेड़, आम का पेड़, तालाब की भीट, भूसे का ढेर जैसे-जैसे सब दीखता जा रहा था, वैसे-वैसे विभा अतीत में जाकर धुंधली हो चुकी यादों को बुहारती आ रही थी|

“ये आजकल के बच्चे तरक्की पसंद हो गये हैं| शहर-तो-शहर, लगता है अब गाँव के बच्चे भी जमीनी-स्तर का खेल खेलना भूल चुके हैं| बस पढ़ना-लिखना और मोबाइल में खोए रहना| यदि ऐसा न होता तो इस समय यहाँ पर बच्चों का जमावड़ा लगा हुआ होता|” अर्पण की ओर देखकर बड़बड़ाई, लेकिन उसने कान ही न दिया| विभा कसमसाई “जनरेशन गैप हम सिर्फ इंसानों के बीच ही नहीं आया! प्रकृति, वातावरण हवा, पानी, पशु-पक्षी सब के बीच आ गया है| खलियान भी कितना वीरान पड़ा है| यहाँ पैरा का जो पहाड़ खड़ा हुआ है, इसपर बचपन में चढ़कर कितनी बार फिसलते हुए हम सब उतरा करते थे| जो जितनी जल्दी चढ़कर उतर जाता वह विजयी हुआ करता था| परन्तु आज यहाँ एक बच्चा नहीं दिख रहा!”

थोड़ी ही देर बाद गाड़ी दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी थी| नानी,

मौसी, मामी सब विभा की अगवानी करती हुई, अर्पण को अंकवार में भरने को आतुर थीं|

बबुआ कहकर उसको सीने से लगा लेना चाहती थीं| चश्मा चढ़ाते हुए वह भी सभी से प्यार से मिला| जैसे कि सभी को वह पहचानता हो|

जलपान करने के पश्चात मामी ने अर्पण से कहा, “बचुआ जाओ, जाकर खेलो|” कहने के साथ ही सामने खड़े बच्चों की ओर इशारा कर दिया|

अर्पण ने निगाहें फैलाई, अपने से आधी उम्र के बच्चों को देख आँखें फेरकर चिरौरी करता हुआ बोला, “मम्मी, प्लीज...!”

विभा ने पर्स में रखा उसका मोबाइल निकालकर पावर बैंक के साथ उसकी ओर बढ़ा दिया|

यह देखकर इस बार मौसी ने मुँह खोला, “आजकल के बच्चे भी ..!”

अर्पण की नानी ने अपनी बिटिया की बात को आगे खींचते हुए कहा, “बिट्टी यह तउ फिर भी ठीक बा, उ पुणे वाली बिट्टी का बेटुआ त घबराय गवा रहा| गलती ओकर न अहै, कंकरीट के जंगल में रहय के आदी लोगन के इ हरा-भरा सवच्छ वातावरण कैसे भावेगा भला!

अर्पण अपनी माँ को नानियों, मामियों, मौसियों के द्वारा होते व्यंग्य तीरों के बीच में छोड़कर, अपने मोबाइल के भँवर में गुम हो चुका था|

--०--

फस्ट इम्प्रेशन

"मम्मी-- मम्मीsss...! कहाँ हो आप?"

"क्या है छवि? मैं छत पर कपड़े डाल रही हूँ| आs रही हूँ! हुआ क्या है! क्यों चीखे जा रही हो?"

"मम्मीईईई..." कई बार आवाज लगाने बाद भी अपनी मम्मी को पास में न पाकर छवि ने तेज स्वर में पुनः पुकारा|

"अरे बाबा क्या हुआ? आती हूँ! जल्दबाजी करके सीढ़ियों पर गिरकर मुझे अपने पैर थोड़े ही तोड़वाने हैं|"

नीचे उतरने के बाद वह सीधे खाली बाल्टी रखने पहले बाथरूम में गयी| साबुनदानी, सर्फ पाउडर और कपड़े धोने का ब्रश यथास्थान रखने के बाद बाथरूम को धोने लगी| तब तक छवि कमरे से बाहर आकर मम्मी का हाथ पकड़ते हुए अपने कमरे में खींच ले गयी| जैसे ही कमरे में प्रवेश हुई कि छवि उतावली होकर बोली, मम्मी इधर आकर बैठिए न!"

पलंग पर बैठते हुए रूपा बोली- "क्या हुआ! आज बड़ा लाड़ आ रहा है माँ पर| स्कूल में किसी से लड़कर आई है क्या?"

"नहीं मम्मी, लड़ूँगी क्यों! मैं आपकी अच्छी बच्ची हूँ, हूँ न?"

"फिर क्या बात है, कोई काम है?"

"छोटा-सा|" अनामिका और अँगूठे को सेंटीमीटर भर एक दूसरे से दूर रखकर उसने बड़े मनुहार से कहा|

"कित्ता छोटा-सा है, बता भी दे अब!" लाड़ लड़ाती हुई रूपा बोली थी|

"टीचर जी ने कहा है घर से पत्र लिखकर ले आना, ट्यूशन पर देखूँगी|"

"अच्छा तो यह बात है! पहले खाना खा लो| फिर लिखवाती हूँ तेरा पत्र! ट्यूशन तो चार बजे से है न! अभी तो बस ढाई बजे हैं| हाथ मुँह धोकर कपड़ें बदल लो| तब तक मैं खाना गरम कर देती हूँ|" छवि भोजन करने के मूड में नहीं थी| उसे ट्यूशन के पहले दिन जल्दी पहुँचना था और दिया हुआ होमवर्क ढंग से लिखकर ले जाना था| जैसे कि उसकी टीचर उससे खुश हो जाए| अतः खाना जल्दी-जल्दी खत्म करके छवि कॉपी-पेन लेकर बैठ गयी| "मम्मी जल्दी करिए|" बर्तनों की आवाज सुनकर छवि ने पुनः टेर लगाई| "आती हूँ..!" क्षणिक अन्तराल के बाद आँचल से हाथ पोंछते हुए रूपा उसके पास बैठकर कॉपी देखने लगी|

रूपा ने पत्र-लेखन के विषय को देखकर कहा, "अरे, इतना सरल तो विषय दिया है! अपने पापा को ही तो पत्र लिखना है| वह भी तू खुद से नहीं लिख सकती है, कितनी बार तो पत्र लिखती रही है! जानती है…" रूपा की बढ़ती हुई बात की रील काटते हुए छवि बोली, "अरे मम्मी! अब लेक्चर मत दीजिए, आपका लेक्चर शुरू हो गया तो घंटों उसी में निकल जाएँगे| फटाफट पत्र लिखवा दीजिए न, प्लीज| यदि आप लिखवाएँगी तो पहले दिन ही टीचर पर मेरा इम्प्रेशन अच्छा जमेगा|" बिटिया की बात सुनकर रूपा मुस्कराई| फिर पलंग पर पालथी मारकर इत्मिनान से बैठकर पत्र लिखवाने लगी| बिटिया ने पत्र लिखने के बाद उसे उच्च स्वर में

पढ़ा| पत्र समाप्त होते ही रूपा को कॉपी पकड़ाते हुए कहा, "मम्मी, देखिए तो ठीक लिखा है न, टीचर के सामने मेरा प्रभाव अच्छा पड़ना चाहिए? आप जल्दी से इसके वर्ड-मिस्टेक्स चेक कर लीजिए, तब तक मैं तैयार हो जाऊँ|"

गलत शब्दों को सही करते हुए रूपा बोली, "बिलकुल पड़ेगा, क्यों नहीं पड़ेगा भला? आखिरकार यह पत्र तेरी माँ लेखिका रूपा ने लिखवाया है| अपने जमाने की सर्वश्रेष्ठ पत्र धाविका|"

"हा हा हा... हँसते हुए छवि बोली, धाविका..., मेरी प्यारी इंटेलिजेंट मम्मी|"

“पत्र लेखन में पूरे स्कूल में मुझे कोई भी पछाड़ नहीं सकता था, तो हुई न मैं धाविका|” होंठ पर ‘मुस्कराती हुई स्माइली’ जैसे फैलकर ठहर गई थी| छवि की ‘मम्मी...’ की पुकार पर स्माइली एकाएक गायब होकर उसके होंठ पूछ बैठे, “हो गयी तैयार?”

छवि के ‘हाँ’ कहते ही बैग को कंधे पर लटकाते समय टीचर के घर किस रास्ते से जाना है समझाते हुए वह बोली, “समझी, या मैं साथ चलूँ!” “डोन्ट वरी मम्मी|” कहकर कमरे से बाहर आ गयी| ट्यूशन का पहला दिन था| मेन गेट तक आकर बिटिया को ट्यूशन में भेजने से पहले ढेर सारी हिदायतों के साथ उसने फिर से समझाया, “रास्ते में किसी से न बात करनी है और न किसी अजनबी से कुछ लेना ही है|”

“ओके मम्मी| वामन अवतार की तरह एक कदम में अपनी सोसायटी से पार और दूसरे कदम में दूसरी सोसायटी के अन्दर| बस फिर टीचर के ड्राइंग-रूम में..., हा हा|” मंथर गति से वह हँसने लगी|

“बदमाश!”

“आप चिंता नहीं करियेगा मैं पहुँच जाऊँगी|”

भेजने के बाद रूपा के दिमाग में पत्र का प्रारूप अब भी घूम रहा था| वह अनचाहे ही अपने अतीत के पाल्हे में प्रवेश कर गयी थी| पाल्हे में घुसते ही वह बचपन के उन दिनों में लौट गयी, जब वह अपने पापा को पत्र लिखा करती थी| पापा को पत्र लिखने में पहली ही लाइन निश्चित रूप से लिखनी ही होती थी| जो इस प्रकार से थी, 'अत्र कुशलं तत्रास्तु'| अब तो पत्र का लिखना ही बड़ा भारी काम है, तो बच्चे इस लाइन को क्या खाक लिखेंगे! उन्हें तो संस्कृत पढ़ना-लिखना ही बोझ जान पड़ता है| जब हिंदी में पत्र लिखने से कतराते हैं तो फिर संस्कृत में आखिरकार कैसे लिखेंगे?

वैसे आजकल के बच्चों को क्यों कोसना, क्या फोन की सुविधा हो जाने के बाद मैंने खुद पिता को कभी पत्र लिखा! सालों-साल गुजर गये एक पत्र का भी आदान प्रदान नहीं हुआ| पहले नया साल आते ही कितने मनोयोग से सब सम्बन्धियों को भेजने के लिए उस सम्बन्ध के हिसाब का देखभाल करके ग्रीटिंग कार्ड खरीदती थी| खासकर पिता को भेजने वाला कार्ड खरीदने में बड़ी सजगता रखनी पड़ती थी| कहीं कोने में इंग्लिश में कुछ उटपटांग-सा न लिखा हो| बड़े ध्यान से चित्र से लेकर कोट तक, सब कुछ देखना पड़ता था| वरना पिता पहले मेरे अंग्रेजी ज्ञान पर टाँग खींचते मिलते, फिर मेरी समझदारी पर| और अच्छा खासा सम्बन्धों की थ्योरी पर लेक्चर सुना देते थे| दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँककर पीता है| अतः एक बार गलती से कार्ड खरीदने में असावधानी के चलते खरी-खोटी सुन चुकने के बाद, दुबारा गलती दोहराने का सवाल ही नहीं उठता था|

अब तो ग्रीटिंग कार्ड खरीदना भी दूर की कौड़ी हो गया| बस मैसेज लिखा या फिर कोई पिता पर भावुक स्लोगन लिखा हुआ पिता विषय का फोटो मोबाइल नम्बर पर फारवर्ड कर दिया| लेकिन स्माइली के इधर-उधर भेजने पर अब भी वही पुरानी वाली क्लास शुरू हो जाती है| बुदबुदाना जारी था, किन्तु होंठों पर मुस्कान वाली स्माइली फिर से

चिपक आयी थी| इस उम्र में भी पिता से डाँट खा सकती हूँ और आजकल के बच्चे ... वह यह सोचकर अपना मूड बर्बाद नहीं करना चाहती थी| अतः जैसी ही ऐसे विचार ने दिमाग का किवाड़ खटकाया, उसने तुरंत किवाड़ में कड़ी लगाकर ताला जड़ दिया|

धीरे-धीरे वह यादों की रस्सी पर सावधानी से चलती हुई सोचने लगी| 'आखिर वह भी क्या दिन थे| उस समय पोस्टकार्ड और अंतर्देशीय पत्र खूब चलते थे| पापा को लिखे पत्र का जब जवाब आता था तो उसे पढ़ते हुए अक्सर उसमें एक शिक्षक की अनुभूति होती थी| मम्मी के पत्रों में बस प्यार भरा होता था| हाँ शादी के बाद अवश्य ही उसमें एक शिक्षिका दृष्टिगत होने लगी थी| दोनों कुल के मर्यादा की रक्षा बस तुम्हारे ही कंधो पर है बिटिया! उनका तकियाकलाम हो गया था जैसे, हर पत्र में यही लाइन अंत होते-होते घुसपैठ कर ही लेती थी|

आजकल के बच्चे तो पोस्टकार्ड और अंतर्देशीय पत्र किस चिड़िया का नाम है, जानते ही नहीं हैं| कबूतर जा..., जा...गाने ने यह प्रचारित तो कर दिया कि किसी जमाने में पत्र कागज के पुर्चे पर लिखकर कबूतर को डाकिया बनाकर भेजा जाता था| लेकिन अभी तक पोस्टकार्ड और अंतर्देशीय पत्र को लेकर कोई ऐसी फिल्म नहीं बनी, जो न्यू-जनरेशन को उसकी महत्ता समझा सके| उनके लिए ये चीजें भी आठवें अजूबे जैसी ही साबित हो रही हैं| पत्र लेखन तो बस विषय के एक भाग के रूप में कॉपी में होमवर्क की तरह ही बच्चे करते हैं, या कहे कि किसी प्रकार पत्र लिखकर अपनी जान छुड़ाते हैं| असलियत में तो पत्र लिखना जैसे उन्हें पसंद ही नहीं, बस फेसबुक और व्हाट्स-एप पर खूब लिखवा लो इनसे, स्टेट्स-मैसेज वगैरह|

मैंने तो अपने जमाने में सम्बन्धियों को लिखे गये पत्रों के जवाब में आए पत्रों को सहेजकर रखे भी हैं इतने सालों तक| ये आज की पीढ़ी इन भावों को क्या ही और कैसे ही सँभालेगी! कोई बताए तो! कम्प्यूटर और मोबाइल मेमोरी में क्या!' खुद से ही सवाल पूछती हुई रूपा खुद को ही उत्तर देती रही

थी| थोड़ी देर तक निमग्न-सी वह बैठी ही रही| एकाएक पुनः बुदबुदाई, 'हमारे जमाने में ये सब चीजें कहाँ थीं! तब तो पत्र ही चलते थे| खूब लिखे पत्र रिश्तेदारों को, पिता को, फिर पति महोदय को|' पति का ख्याल आते ही मन-ही-मन मुस्करा उठी रूपा| पति की याद के साथ उसे महसूस हुआ जैसे वातावरण में हरसिंगार की खुशबू फैल गयी है|

पत्र के विषय में सोचते-सोचते अचानक अलमारी में सहेज कर रखे पति के द्वारा लिखे पत्र रूपा ने निकाल लिए| पहले उन पत्रों को कोमलता से सहलाया फिर एक टक उनको निहारती रही| कुछ पत्र अंतर्देशीय थे, तो कुछ कागज के पुलिंदे में बँधे पन्नों में लिखे गये थे| एक बार के पत्र ही चार पाँच पन्नों में लिखती थी तो भला उन्हें दो पेज के छोटे से अंतर्देशीय पत्र में लिखना कैसे संभव हो पाता भला! उसने उन बँधे पुलिंदे में से एक पुलिंदा उठाया फिर बड़ी कोमलता से उसमें बँधी डोरी वह खोलने लगी| लगा यदि जल्दबाजी में खोलेगी तो कागज पुराना पड़कर पीला हो जाने के कारण फट जायेगा| धागा खोलने के उपरांत छूटते ही बासी गुलाब की पंखुड़ियों की भाँति पत्र के पन्ने छिटक गये| और साथ ही छिटक आई उन पन्नों की महक रूपा के तनमन में समा गयी|

'जमाना कितना बदल गया है'| सोचते ही अनमनी होकर अतीत और भविष्य में तालमेल बैठाने लग गयी थी रूपा| उसे लगा उसके हाथों में पत्र का बंडल नहीं बल्कि एक तराजू है जिसके एक पलड़े में वह पत्रों का बंडल है और दूसरे पलड़े में मेमोरी कार्ड| वह दोनों पलड़ों को तौलने की कोशिश कर रही है| स्वाभाविक है पत्रों वाला पलड़ा जमीन को छू रहा था, बिलकुल इन पत्रों की यादों की तरह| वैसे समय के साथ मेमोरी कार्ड की यादें भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है लेकिन इन पन्नों के यादों की बात ही निराली है| पत्र में एक-एक अक्षर को छूकर महसूस किया जा सकता है|

थोड़ी देर वह उन पन्नों को अपनी मखमली छुअन से छूकर उससे होकर निकलती उसकी महक में ही खोयी रही, फिर उसने उनमें से एक

पत्र को उठाकर अनायास ही पढ़ना शुरू कर दिया| पढ़ना क्या, उसने उन पलों को पुनः जीना प्रारम्भ कर दिया|

पढ़ते हुए उन दिनों में खोयी ही थी कि दरवाजे की घंटी बज उठी| जल्दी-जल्दी पुराने पर्स में फिर से उन पत्रों को सहेज अलमारी में छुपाकर रख दिया और दरवाजा खोलते जाते हुए बुदबुदाती जा रही थी, "फस्ट इम्प्रेशन तो इन पत्रों का था जो आज तक नहीं जा रहा| जेहन में खट्टा-मीठी चूरन-सी याद बनकर ठहर गया है|"

बिटिया दरवाजा खोलते ही चहक उठी, "मम्मी, मम्मी...!" एक बार नहीं बल्कि गोल-गोल घूमकर चार-पाँच बार खुशी के आवेग में मम्मी कह चुकी थी वह|

रूपा बोली, "अरे बता तो क्या हुआ?" बिटिया के यूँ चीख-चिल्लाकर खुशी व्यक्त करने पर भी उसके पूछने में शहद-सी मिठास भर आई थी| पति के द्वारा लिखे पुराने पत्र पढ़ने का असर था या फिर बिटिया को प्रसन्न अवस्था में देखने का, यह तो कोई नहीं बता सकता था|

"मम्मी जानती हो, टीचर ने कहा, 'तुम्हारी हिंदी तो बहुत अच्छी है, बहुत सुन्दर लिखा है तुमने|' मेरे पत्र को सुनकर सारे बच्चों ने खूब ताली बजाई, और हाँ टीचर ने भी|"

"अच्छा! तब तो तुम्हारा इम्प्रेशन उनपर खूब अच्छा पड़ा न?" रूपा हँसते हुए बोली|

"हाँ मम्मी, पर!"

"पर क्या?" रूपा थोड़ा आश्चर्य से पूछ बैठी|

"...मम्मी! बाद में मैंने टीचर को सच भी बता दिया कि 'यह पत्र मेरी मम्मी ने लिखवाया है| मैंने एक भी लाइन खुद से नहीं लिखी है'| उन्होंने मुझसे आपका मोबाइल नंबर माँगा तो मैंने दे दिया| मुझे पता नहीं, शायद वह

मेरी शिकायत आपसे करेंगी! मम्मी आप संभाल लेना| मैं अब खेलने चली| ठीक, सम्भाल लेंगी न! मैं जाऊँ न?” खिलखिलाती हुई छवि खेलने के लिए घर से बाहर की ओर भाग गई थी|

रूपा आशंका से भर गयी| मुस्कराहट का मुखौटा चढ़ाए हुए उसने छवि से कह तो दिया था कि "ठीक है! जाओ, पर आधे घंटे में आ जाना अच्छा! आधे घंटे मतलब आधे घंटे ही, समझी!” परन्तु दिमाग ठनक रहा था| आखिर क्या बात हो गयी! क्या वे छवि को ट्यूशन नहीं पढ़ाना चाहती हैं? घर के आसपास एक यह ही तो अच्छा ट्यूशन पढ़ने के लिए मिल पाया है|

छवि के जाते ही रूपा थोड़ी देर चिंतित रही थी फिर काम में लग गयी जिसके कारण दिमागी ऊहापोह पीछे छूट गया| तभी मोबाइल घनघना उठा, उठाते ही आवाज आई, “आप छवि की मम्मी बोल रही हैं?”

रूपा वाक्य सुनते ही समझ गयी कि ये छवि की टीचर ही होंगी| वह सफाई देना ही चाहती थी कि उधर से आवाज आई, “आपकी बिटिया बहुत प्यारी और साफदिल की है| उसकी यह साफगोई बनी रहे इसका आप ख्याल रखियेगा| आजतक मैंने बहुत बच्चों को पढ़ाया है, पर ऐसे बच्चे आज के जमाने में कहाँ मिलते हैं! वह चाहती तो मुझे सच नहीं बताती, किंतु उसने बताया कि पत्र आपने लिखवाया है| पढ़ने में भी वह खूब अच्छी है| मेहनती है, खूब आगे बढ़ेगी|”

रूपा ने सकुचाते हुए कहा कि “बस आप उसका ख्याल रखियेगा|”

उन्होंने भी भरोसा दिलाया, “आप चिंता ना करें, मैं अपने बच्चों को खूब मेहनत से पढ़ाती हूँ|”

“भेजने में डर रही थी कि कहीं!”

“आप डरिये नहीं| मैं बच्चों को समय से छोड़ देती हूँ| जिस दिन भी देर हो, या बच्चे नहीं आएँ तो मैं पैरेंट्स को फोन कर देती हूँ| कुल मिलाकर बच्चियों की सेफ्टी की चिंता मुझे भी है, आप निश्चिंत रहें|"

"जी ये तो बहुत अच्छी बात है, मुझे इसी की चिंता थी|" रूपा जैसे भार मुक्त हो गयी|

"मैं होमवर्क भी देती हूँ और कापियाँ भी हर बच्चे की बड़े ध्यान से देखती हूँ, खानापूर्ति मैं कभी नहीं करती हूँ| स्कूल की डायरी आप चेक करती रहा करें| आपको लगे कि मैं ध्यान नहीं दे रही हूँ या फिर मैं अपना काम ईमानदारी से नहीं कर रही हूँ, तो आप निसंकोच मुझे फोन कर सकती हैं|”

मोबाइल द्वारा टीचर से बात करने के बाद रूपा गदगद हो गयी और आश्वस्त भी कि बिटिया को एक अच्छी शिक्षिका मिल गयी है| मोबाइल रखकर बुदबुदाई- “शिक्षक हों तो ऐसे|” अब वह निश्चिन्त हो पत्रों के विषय में सोचती हुई ऐसे मुस्करा रही थी मानो यादों की टोकरी से पत्र रूपी मोगरे एक एक करके उसके समक्ष आकर उसके अंतर्मन को गमका रहे हों|

--०--

मन का डर

उमेश रोज प्रिया से निधि की बड़ाई करता और हर बार की तरह उसकी आँखों में ईर्ष्या देखने की कोशिश करता था| पर अफसोस कि उसे प्रिया की आँखों में कहीं कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था| जैसे उमेश की पिछली जिन्दगी कोई मायने ही न रखती हो उसके लिए| उमेश जिस लड़की के बारे में बता-बताकर उसे उद्धेलित करने की चेष्टा करता, वह पलटकर उसका नाम तक नहीं पूछती थी कभी|

उसने सुन रखा था कि स्त्रियाँ बहुत ईर्ष्यालु होती हैं, शायद गलत सुना था| कभी कभार तो वह उमेश की बातों पर खिलखिला पड़ती थी और फिर तुनककर कहती, “उसी से शादी करके उसे अपने घर ले आते, तब आटे-दाल का भाव पता चल जाता तुम्हें|”

हर पल, हर जगह नाम लेते ही उपस्थित हो जाती थी प्रिया| माँ तो उमेश की हँसी उड़ाते हुए कहती कि उमेश! प्रिया पत्नी नहीं, यह तो तेरी परछाई है, परछाई| कितनी सुघड़ और संस्कारी बहू है मेरी| माँ की ओर देखकर पत्नी का मुस्कराना चुभ जाता था उमेश को| उसे लगता था जैसे प्रिया जता रही हो कि माँ मुझसे ज्यादा, उससे प्यार करती हैं|

दिन ऐसे ही हँसते-खिलखिलाते हुए बीत रहे थे, एक दूजे के गुण-अवगुणों के साथ| उमेश सोचता था कि जो बीत गया, सो बीत गया| दस साल का समय बहुत होता है घाव भरने के लिए| पिछली जिन्दगी की सूखी पौध, उसके जीवन में अब पुनः हरी-भरी होकर नहीं लौट सकती|

ऐसा लग रहा था कि उसका जीवन शांत नदी की तरह बीत जाएगा| इसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी चाहें तो, तूफान क्या, थोड़ी हलचल भी नहीं ला सकते हैं| अपने खुशमय संसार के बारे में सोच-सोचकर उमेश हमेशा गद्गद् होता रहता था|

ऑफिस से लौटते वक्त उमेश ने फिल्म की दो टिकट ले ली थी| सोचा प्रिया को बहुत दिन हो गए कोई भी फिल्म नहीं दिखायी| टिकट देखते ही वह खुश हो जाएगी| घर पहुँच उसने गुनगुनाते हुए डोर-बेल बजाई, ड्रिंग-ड्रांग...| दरवाजा खुला तो सामने सोफे पर निधि को बैठा पाया| इन दस सालों में वह बिलकुल भी नहीं बदली थी| वही छरहरा बदन, वही बालों की स्टाइल| समय की काली छाया भी उसके गोरे मुखड़े को प्रभावित नहीं कर सकी थी| देखते ही वह उसको पहचान गया| उसके साथ बीता समय जैसे आँखों के सामने से क्षण मात्र में ही गुजर गया| एक अजीब-सा डर उसके मन में घर कर गया| ऐसा लगा मानों पैरों के नीचे से सहसा किसी ने हरी-भरी जमीन ही खींच ली हो|

निधि के साथ बैठी प्रिया उमेश को देखकर मुस्करा रही थी| उसे लगा वह मुस्करा नहीं रही है, बल्कि कह रही हो 'अच्छा बच्चू! तुम तो बड़े छुपे रुस्तम निकले| बड़े-बड़े गुल खिलाएँ हैं तुमने तो|' उन चंद पलों में वह खुद को एक ऐसा चोर महसूस कर रहा था, जिसकी दाढ़ी में तिनके ही तिनके हों| मन ही मन उसने सोचा कि अब तक तो मैं, अपनी पत्नी की अच्छाई का फायदा उठाते हुए हँस-हँसकर उसे निधि के बारे में थोड़े सच बता रहा था, तो बहुत कुछ छुपा रहा था| परन्तु अब तो उसकी पोल पूरी तरह खुल जाएगी| उस समय उसे निधि किसी खतरनाक आतंकवादी-सी लग रही थी, जो कभी भी घातक हमला करके उसकी खुशियाँ लूट सकती थी| पुरानी प्रेम-कहानी कहीं हवा हो गयी थी|'

उमेश के ख्यालों में डरावने ख्वाबों ने डेरा डालना शुरू किया ही था कि प्रिया ने आवाज देकर कहा, “अरे, आओ न, आकर बैठो भी| आज ऑफिस से आने पर थकान नहीं हो रही है क्या? खड़े-खड़े ही मिलोगे निधि से?” रिमोट चालित यंत्र की भांति उमेश आकर सोफे पर धम्म से बैठ गया|

प्रिया निधि से बोली, “निधि, ये मेरे पति उमेश हैं| और उमेश! ये निधि है, हमारी नयी पड़ोसन| दो घर छोड़कर तीसरा जो खाली फ़्लैट पड़ा था न, उसमें रहने आई है|”

उमेश के मन का चोर उसे अपनी पत्नी से आँखें चुराने पर मजबूर कर रहा था| उमेश के मन में डर बैठा हुआ था कि कहीं निधि ने बता तो नहीं दिया प्रिया को सब कुछ| ऐसा हुआ होगा तो प्रिया बाद में मेरी खूब खबर लेगी|

निधि जल्दी ही चली गई| उसके जाने के बाद उमेश थोड़ा सामान्य हो पाया| प्रिया ने अगले दस-पन्द्रह मिनट तक कुछ नहीं कहा| प्रतिदिन की भांति ही अपने काम निपटाती रही| सोते समय पलंग के साइड टेबल पर रखी फिल्म की टिकट देखकर बोली, “अरे, मेरी पसंदीदा फिल्म की टिकट लाये और बताए भी नहीं| फालतू में चार-सौ रुपए बर्बाद हो गए| तुम भी न बहुत लापरवाह हो|” कहकर उमेश की बाँहों में लिपट उसने दो-तीन मुक्के उसके चौड़े सीने पर जमाते हुए उलाहना-सा दिया था|

परन्तु उमेश अभी भी गहरे सदमे में था| वह खयालों में ही खोया हुआ था| उसे अपनी बाँहों में कोई शरारती बच्चा झूलता-सा महसूस हो रहा था, जो कभी भी काट सकता था| थोड़ी देर तक साँस रोके वह उस घड़ी का इंतजार करने लगा| लेकिन ऐसी कोई हरकत न देख डरते हुए उसने प्रिया पर नजर दौड़ाई तो वह सुकून से उसकी बाँहों के आगोश में सो चुकी थी|

प्रिया जब-जब पूछती, “तुम्हें क्या हुआ है! आजकल बुझे-बुझे से रहते हो?" उमेश ऑफिस की टेंशन का बहाना बनाकर टाल जाता था| कुछ एक हफ्ते ऐसे ही गुजर गए| हर दिन उमेश डरा-डरा-सा रहने लगा था| जब-जब वह निधि को प्रिया के साथ देखता, अपराधबोध के कारण सहम जाता|

एक दिन दरवाजे पर ही निधि से उसका सामना हो गया| निधि उसकी ओर देख मुस्कराकर निकल गयी| उसे निधि का मुस्कराना ऐसा लगा जैसे वह कह रही हो, ‘बच्चू! आज भी बच गए हलाल होने से| पर कब तक बचते रहोगे? बकरे की अम्मा आखिर कब तक खैर मनाएगी’| या फिर उमेश के मन का चोर था, जो उसे चैन से रहने ही नहीं दे रहा था|

महीनों बाद जब उमेश अपनी चिरपरिचित स्मित के साथ घर में प्रवेश किया, तो उसके चेहरे पर रौनक देख प्रतिउत्तर में प्रिया भी मुस्कराती हुई पूछ बैठी, “क्या बात है जनाब, आज तो दमक रहे हो?” उमेश खुश होते हुए बोला, “जानती हो, मेरा ट्रांसफर हो गया है| यहाँ से बहुत दूर, बैंगलूर के लिए| दो दिन के अंदर ही वहाँ जाकर ज्वाइन करना है|”

ट्रांसफर की बात सुनकर प्रिया के चेहरे की खुशी काफूर हो गयी| उसे ऐसा लगा मानो तूफान आ गया हो| उसकी बसी-बसाई गृहस्थी तहस-नहस होती हुई महसूस हुई| उसने जैसे अपने आप से ही पूछा, “दो दिन में? दो दिन में कैसे हो पायेगा सब? यहाँ जमी-जमाई गृहस्थी, मिंटी का स्कूल, माँ जी के डॉक्टर...और तो और निधि जैसी सहेली और अच्छी पड़ोसन|”

पड़ोसन शब्द सुन उमेश ने मन ही मन सोचा- वही तो मूल कारण है इस ट्रांसफर का| हमारी गृहस्थी में भूचाल भले आए, पर हमारे संबंधों में भूचाल न आने पाए! इसी लिए यह ट्रांसफर बहुत जरुरी था मेरे लिए, मेरे सुखी संसार के लिए| निधि को लेकर मजाक करना अपनी जगह था, पर उसको सामने पाकर हर बार लगता था कि मेरे चेहरे का मुखौटा अब उतरा कि तब उतरा| सोच से बाहर आकर उमेश प्रिया से बोला, “अरे डार्लिंग, तुम चिंता

क्यों करती हो| सब कुछ अरेंज कर दूँगा, तुम्हें जरा भी दिक्कत नहीं होगी| वहाँ तो स्कूल और डॉक्टर सब, यहाँ से अच्छे ही मिल जाएँगे|"

निधि को जब पता चला तो वह प्रिया से मिलने आई, परन्तु घर में उसे मिल गया अकेला उमेश| दोनों ही एक दूजे को एक टक थोड़ी देर तक देखते रहे| दोनों के ही ख्यालों में पुराने मीठे दिनों की रिमझिम फुहार-सी हुई| निधि ने चाहा कि दस सालों की चौड़ी दरार उमेश से लिपटकर भर ले लेकिन...नहीं, नहीं-नहीं..यह प्रिया के साथ विश्वासघात होगा| जल्दी ही निधि सहज होती हुई बोली, "उमेश, मैं तुमसे जबसे दुबारा मिली हूँ, देख रही हूँ तुम मुझसे कटे-कटे से रहते हो| क्या मुझे देख तुम्हें पुराने हसीन लम्हें.., जरा भी याद नहीं आते? तुम्हारी आँखों में मैंने हमेशा डर ही देखा है, जबकि मैं प्यार देखना चाहती हूँ अपने लिए| मुझे लगा था कि तुम मुझसे मिलकर बहुत खुश होगें| पर नहीं, मैं गलत थी|"

सुनकर उमेश खामोश रहा| निधि ने आगे कहा, "मुझे पता चला तुम अपनी पत्नी के साथ बहुत खुश हो| तुम्हारी पत्नी बता रही थी कि तुम हमेशा उसे हँसाते रहते हो| परन्तु मैंने महसूस किया है कि मुझे देखकर तुम्हारी हँसी विलुप्त-सी हो गयी है| मैं समझ सकती हूँ| तुम डर रहे होगे कि कहीं मैं तुम्हारा राज फाश न कर दूँ?"

उमेश मंत्रमुग्ध-सा सुनता रहा| वह न रो सकता था न अपनी सफाई में कुछ कह सकता था| निधि की बातों को बस सिर झुकाए बड़े गौर से सुन रहा था| उमेश की तरफ देखती हुई निधि फिर बोली, "तुम मुझे समझे ही नहीं उमेश! यदि सब कुछ कहना होता तो कब का कह देती| जब मैंने तुम्हें पहले पहल ड्राइंग रूम में देखा था, उसी दिन बता देती कि तुम ही मेरे पति हो| जिसने मंदिर में मुझसे शादी की थी| तुमने ही मुझे छला है| मैं तुम्हारे परिवार और खासकर प्रिया के व्यवहार के कारण चुप रह गयी| सोचा जैसे दस साल मैंने तुम बिन अकेले बिता दिए, वैसे बाकी

की भी बिता दूँगी| तुम्हारी हँसती-खेलती गृहस्थी में आग नहीं लगाऊँगी| सच पूछो तो पहले दिन तुम्हें अपने सामने देखकर बहुत क्रोध आया था, क्योंकि तुम बिना बताये ही मुझे मझधार में छोड़ आए थे, सोचा उसका बदला ले लूँ|"

उमेश ने भयभीत नजरों से निधि की ओर देखा, होंठ बुदबुदाये, लेकिन आवाज नहीं निकली| वह फिर सिर झुकाकर बैठ गया| निधि ने कहा, "परन्तु बातों-बातों में माँ जी से पता चला कि तुम्हारी मजबूरी थी, प्रिया से शादी करना| तुमने अपने माता-पिता के सम्मान के लिए हमारे प्यार को भुला दिया था| माँ के कहने पर तुमने उनकी दूर की गरीब रिश्तेदार की बेटी से शादी कर ली| माँजी और प्रिया के अपनेपन के कारण मैं अपना बदला भूल चुकी थी| तुम्हारी मजबूरी समझ में आ गयी थी मुझे| बस एक ही शिकायत है कि कम से कम तुम एक खत ही डाल देते मेरे नाम का|" आँसू कोर तक आकर जज्ब हो गये थे| अपने दुपट्टे से उसने आँखों की नमी को सुखा लिया|

अपने को संयत करते हुए भावपूर्ण शब्दों में निधि पुनः बोली, "उमेश, जहाँ कहीं रहो, खुश रहो| अच्छा हुआ तुमने जानबूझकर ट्रांसफर ले लिया| हो सकता था मेरे सब्र का बाँध एक-न-एक दिन टूट जाता और शायद तुम्हारी गृहस्थी बह जाती|" यह कहते-कहते निधि की आँखों में आँसू आ गए| वह चाहते हुए भी उमेश से अपने आँसुओं को छुपा नहीं सकी|

उमेश का मन ग्लानि से भर उठा| अपनी हैंकी निधि की ओर बढ़ाकर वह मरियल-सी आवाज में बोला, "कितना गलत सोचता था मैं महिलाओं के बारे में! सच है, महिलाओं को समझ पाना, मर्दों के बस की बात नहीं| समुद्र से ज्यादा गहरी होती हो तुम स्त्रियाँ!"

तभी बाहर से प्रिया आ गयी| माँ को सोफे पर बिठाकर निधि से गले लग कर बोली, "तुम कब आई? मैं जरा डॉक्टर के पास चली गयी थी, माँ को दिखाने| सॉरी यार, तुम्हें छोड़कर जाना पड़ रहा है| पर मैं फोन करती रहूँगी और जब भी दिल्ली आऊँगी तुमसे जरुर मिलूँगी| पक्का..., क्यों उमेश?"

उमेश ने भी मुस्कराकर हामी भरते हुए कहा, “हाँ, बिलकुल पक्का|” उसके मन का डर बादल हो हवा संग कहीं दूर बह गया था| वह कभी जिस निधि को प्यार करता था, अब उसका सम्मान करने लगा था| उसके दिल में स्त्रियों के प्रति इज्जत बढ़ गयी थी| एक तरफ माँ, जो कि उसकी नजरों में सबसे अच्छी और प्यारी माँ थी| दूसरी तरफ एक प्यारी पत्नी, जिसे पत्नी नहीं अर्धांगनी कहना अधिक सटीक बैठता है| जो उसकी हर सही-गलत बात को हँसी में उड़ाकर हमेशा खिलखिलाती रहती थी| और एक प्रेमिका, जो उसकी नजर में उसकी पत्नी ही थी, भले समाज की नजरों में न हो| जिसकी अच्छाई वह अब ताजिंदगी भूल ही नहीं सकता था|

और हाँ, एक नन्ही बेटी भी, जो उसे दुनिया का सबसे अच्छा पिता बताते हुए, अपनी सहेलियों से लड़ पड़ती थी| आज उमेश खुद को दुनिया का सबसे खुशनसीब इन्सान समझ रहा था|

--०--

सुधियों के अनुबंध

कहने को तो लीलाधर का अपना भरा-पूरा परिवार था| किंतु पत्नी सुधा का देहांत होने के बाद से वह पूरी तरह से अकेले पड़ गए थे| अब तो बस घर की चार दीवारें ही शेष रह गयी थीं और दीवारों से टकराती हुई उनकी आवाजें| छोटा बेटा और बहू लीलाधर के साथ ही रहते थे| बेटा-बहू दोनों ही नौकरी करते थे अतः सुबह निकलते तो देर शाम तक घर लौटते थे| बाकी बची उनकी और तीन संतानें, तो वे अपने-अपने परिवार में मगन उस घर से दूर-दराज जा बसी थीं| पूरा दिन भूतों की तरह अकेले घर में रहकर समय काटना अब उनकी दिनचर्या का ही हिस्सा बन गया था| जब कभी समय उन्हें काटने को दौड़ता तो वह पुरानी फोटो-एल्बम को ही उठाकर देखने में, या फिर बागवानी करने में खुद को व्यस्त कर लेते थे| तस्वीरों को देखते हुए यादों के पालने में झूलना उन्हें अधिक सुहाता था| उनकी रातें इस भरोसे के साथ चैन से बीत जाती थी कि उनके साथ कोई तो है इस घर में| उनको इस बात का भी विश्वास था कि रात को कोई कष्ट होने पर, पुकारते ही बेटा-बहू दौड़े आयेंगे उनके कमरे में|

बेटी-दामाद, तीन बेटे-बहू और नाती-पोतों से गुलजार रहती थी कभी उनकी यह बगिया| जब तक सुधा जिन्दा थी, माली की तरह अपनी बगिया को सम्भालकर रखे हुए थी| क्या मजाल थी कि उसकी बगिया का एक भी पौधा और पौधों से दो कदम दूर खुद को रोपने की कोशिश भी करे| सुधा के संरक्षण में फले-फूले उनके पौधे अब बिखरकर अपने-अपने में ही, निखरे-

निखरे रहने लगे थे| चार दिन के लिए भी दो बहुएँ एक साथ गाहे-बगाहे, इस घर में इकट्ठी हो भी जातीं तो लीलाधर का अकेलापन भले न दूर होता हो, मगर बहुओं की आपसी लड़ाईयों के कारण घर में कोलाहल अवश्य मचा रहता था| यानी कि घर का सूनापन उन दिनों में छिटककर घर के पिछवाड़े दुबक जाता था| दोनों बहुओं के मुखड़े पर प्रत्येक क्षण युद्ध का बिगुल बजा रहता था| आजिज आकर लीलाधर खुद ही बेटे को फोन करके बहू को लिवा ले जाने को कह देते थे|

लीलाधर दीवारों की ओर निहारते तो सालों पहले जो दीवारें हर वक्त खिलखिलाती हुई रहती थीं, अब वही काटने को दौड़ती थीं| पुरानी हँसती-खेलती पारिवारिक तस्वीरों को बेटे ने हटाकर दीवारों को नंगी कर दिया था| कहने पर कहता है कि 'अब ऐसी तस्वीरें लटकाने का फैशन नहीं है| बड़ी-सी सीनरी फ्रेम करवाकर यहाँ पर लगाऊँगा'| उसके विरोध के बावजूद उन्होंने सुधा की तस्वीर पोंछकर लगाते हुए उसको झिड़का था, 'अभी तक तो यह घर मेरा है'| यह कहने की आवश्यकता ढाई वर्ष पूर्व तक उन्हें कभी पड़ी नहीं थी| परन्तु एक दुर्घटना में पत्नी के गोलोकवासी हो जाने पर वह अलग-थलग पड़ने लगे थे| समय के साथ सबका खालीपन भर गया था, मगर लीलाधर का घाव तो अभी भी जैसे ताजा-ताजा था| वह मनहूस दिन वह कैसे भूल सकते हैं भला! उस दिन वह अपने रिश्तेदार के बेटी की शादी में जा रहे थे| हाइवे पर उनके ड्राइवर को झपकी क्या आई उनकी दुनिया ही लुट गयी| ट्रक के साथ हुए भीषण हादसे में सुधा की मौके पर ही मौत हो गयी थी| और वह खुद भी बुरी तरह घायल हो गये थे|

भरी दोपहरी में सूने पड़े घर में भाँय-भाँय उठती ध्वनि के मध्य वह घंटों गुमसुम पलंग पर पड़े रहते थे| सुधा को जब-तब याद करके उनकी आँखें नम हो आती थीं| जब वह बहुत ज्यादा उदास होने लगते थे तो सुधा का एक-न-एक बक्सा खोलकर बैठ जाते थे| और घंटों उस चार-बाई-सात

के कमरे में बैठे-बैठे न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते रहते थे| बेटे-बहू ने कई बार उनकी आवाजें सुनी थीं लेकिन गुनने की फुर्सत किसे थी भला| दोनों उन्हें उनके हाल पर छोड़कर अपने-अपने काम पर निकल लेते थे| रविवार को घर पर होते तो अपनी गृहस्थी की समस्या के समाधान में लगे रहते थे, या फिर फिल्म देखने या घूमने-फिरने का प्रोग्राम बना लेते थे| लीलाधर को समय पर भोजन मिल जाता था, वे इस बात से ही अब खुश रहने में अपनी भलाई समझने लगे थे|

दुःख भरी बदली को उड़ाने के लिए सुख का एक तेज झोंका ही बहुत होता है| वह हवा का झोंका लीलाधर के आसपास मंडराने लगा था| घर में तीसरी पीढ़ी के बड़े सदस्य यानी की लीलाधर के बड़े बेटे के इंजीनियर बेटे निखिल की शादी तय हो गयी थी| निखिल की सगाई की डेट भी फिक्स हो गयी थी| परिवार के हर छोटे-बड़े सदस्य सगाई के लिए दूर-दराज से घर आने लगे थे| सालों बाद सभी जमा हुए थे तो घर में बड़ी रौनक-सी हो गयी थी| उन सबको अपने आस-पास पाकर लीलाधर बेहद प्रसन्न थे| घर में चहल-पहल होने के कारण पहाड़-सा कटने वाला दिन जैसे भागने लगा था| तीन-चार दिन तो ऐसे फुर्र हो गए, जैसे पिंजरे से छोड़ी गयी चिड़ियाँ उड़ती हुई मिनटों में नजरों से ओझल हो जाती हैं|

पाँचवें दिन जब लीलाधर का मझला बेटा और बेटी भी आ गये तो उस शाम को, भोजन करने के बाद बड़े से डायनिंग हाल में सभी सदस्यों की बैठकी जमी| बच्चा-पार्टी अलग से दूसरे कमरे में अपनी बैठक जमाये आपस में हँसी-ठिठोली कर रही थी|

शादी पर बहू के लिए गहनें क्या-क्या बनवाए जाएँ, इस पर बहुओं ने लीलाधर के सामने सोची-समझी साजिश के तहत चर्चा छेड़ दी| बात आरम्भ होते ही बड़ी बहू ने तपाक से कहा, “मम्मी की ज्वैलरी पड़ी होंगी उन्हीं में से

दो-चार बेचकर नई डिजाइन की ज्वैलरी खरीद ली जाय| क्यों क्या कहती हो छोटी?”

यह सुनते ही छोटी के कुछ कहने से पहले ही लीलाधर क्रोध से भर उठे, “मैं जानता हूँ! तुम सबकी नजर मेरी सुधा के गहनों पर ही है| मैं उसके गहनों पर तुम लोगों को हाथ भी नहीं लगाने दूँगा| ये बात जितनी जल्दी हो सके, तुम सभी उतनी जल्दी अपने दिमाग में बैठा लो|”

अपने पिता को गुस्से में भरा देख बेटी श्रुति दौड़कर एक गिलास पानी लाकर उन्हें देती हुई बोली, “पापा, मत दीजिए एक भी गहना, पर इस तरह क्रोधित नहीं होइए| आपका ब्लडप्रेशर बढ़ जायेगा, खामख्वाह आप ही को फिर परेशानी उठानी पड़ेगी!”

“बड़े भैया के पास जितने रूपये पड़े होंगे, उसमें से गहनें बनवा लिए जायेंगे!” मझले भाई ने मौके पे छक्का मार दिया|

“बिलकुल, उतने में जितने भी जेवर बनते हैं, उतने ही ठीक रहेंगे| यदि एक नेकलेस भी बन पाया तो भी कोई बुराई नहीं है| जरुरी थोड़ी है कि चढ़ावे में चार-पाँच नग ही ले जाया जाए|” छोटी बहू ने मौका पाते ही अपने मन को हल्का कर लिया|

“हाँ सही बात है| इस महँगाई के जमाने में एक हार-अँगूठी भी बहुत है| वैसे भी आजकल आभूषण पहनता ही कौन है!” मझली बहू पीछे क्यों रहती| उसने भी आहुति डाल दी|

तब तक पिता एक साँस में ही पानी पीकर गिलास बेटी को पकड़ा स्नेह-भरी निगाहों से उसकी ओर देखने लगे| जैसे कह रहे हों, ‘एक तू ही तो है जो मेरे हृदय को भी टटोल लेती है| ये बहुएँ तो मुझे दो रोटी सुकून से खाने को भले न दें किंतु मेरी बुढ़िया के गहनों-रूपयों में इन्हें हक जरुर से चाहिए’|

श्रुति उनकी भाव भंगिमा देखकर बोली, “आप अब ठीक हैं न पापा! पानी और ले आती हूँ , आप अपनी ब्लड प्रेशर की दवा खा लीजिए| उसे खाना फिर से भूल गये न?”

“छोटी भाभी, आप पापा के कमरे से ब्लडप्रेशर की दवा लेते आइए, मैं पानी लेकर आती हूँ|” बहू ने जैसे ही दवा लाकर लीलाधर के हाथ पर रखा, उन्होंने झट से दवा को मुँह में रख लिया| श्रुति ने तुरंत हाथ में पानी पकड़ा दिया| मासूम बच्चे की तरह उन्होंने दवा को पानी के सहारे बड़ी कठिनाई से गले से नीचे उतार लिया| शोर सुनकर अब तक सारे बच्चे भी दूसरे कमरे से डाईनिंग हाल में आ चुके थे|

लीलाधर को दवा खाते देख मझले बेटे का बेटा सुमित हँसते हुए बोला, “दादा जी, आप तो दवा नहीं बल्कि लग रहा है जैसे मम्मी के हाथों से बनाई गयी कोई सब्जी खा रहे हैं| उनकी बनाई सब्जी को पानी के साथ ऐसे ही तो निगलना पड़ता है हमें|”

“चुप्प बैठ| हर कहीं माँ की बुराई ही करनी है बस|” एक चपत लगा उसकी माँ ने उसे डाँटते हुए खींचकर नीचे बैठा लिया| लीलाधर उसकी बात को सुनकर मुस्कराए फिर उसे बुलाकर अपने पास बैठा लिया| कुछ देर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए दादा होने का सुख ग्रहण करते रहे|

इधर-उधर की बात करते हुए थोड़ी देर बाद माहौल शांत हुआ तो बेटी ने मुस्कराते हुए पिता की ओर देखकर कहा, “पापा, भाभी बता रही थीं कि आप उस छोटे से कमरे में घंटों न जाने क्या करते रहते हैं| और उसमें से निकलते ही दरवाजे पर एक बड़ा-सा ताला लगा देते हैं!”

बेटी की बात सुनकर लीलाधर के चेहरे पर मुस्कराहट चाँदनी-सी बिखर गयी| चाँदनी की बिखरी उस ठंडक से चंद पल सब सराबोर होते रहे| थोड़ी देर अपनी आँखों की पुतलियों को बंद रखने के बाद धीरे-धीरे आँखों से पुतलियों का पर्दा हटाते हुए लीलाधर ने कहा, “उस कमरे में.., उस कमरे के

हर कोने में, हर चीज में तेरी माँ रहती है, उसी से बतियाता रहता हूँ| क्या करूँ! सारा दिन अकेलापन खाने को दौड़ता है| इन लोगों को तो फुर्सत ही नहीं है दो घड़ी मेरे पास बैठकर बात करने की|" उनकी बात सुनते ही छोटा बेटा-बहू एक दूसरे के चेहरे की ओर शिकायती अंदाज में झाँकने लगे| बहू तिलमिलाकर मन में ही बुदबुदाई, "मेरी सेवा का तो एहसान मानेंगे नहीं, बस हाथ काटने को कह दो| दो बहुएँ और भी तो हैं उनके पास पंद्रह दिन भी रहकर तो दिखाएँ!"

"पापा, संदूक में छिपाकर रखे हुए मम्मी के गहनें, आप एक बार हम लोगों को दिखाइए तो सही|" आभूषणों को देखने के लिए बिटिया की भी लालसा जाग गयी| साथ में बहुओं के मन में भी लड्डू फूटने लगे|

"लो चाबी बिटिया| जाओ कमरा खोलकर वह लाल वाली पेटी उठा ले आओ| तुम सबको दिखाता हूँ तुम्हारी माँ का खजाना|"

बड़े बेटे का छोटा बेटा रोहन बोला, "अहा! दादी का खजाना| खुल जा सिम-सिम की तरह दादी का खजाना भी खुल रहा है बड़े भैया! जल्दी से आइए|" बाथरूम गए अपने बड़े भाई को बुलाता हुआ वह चिल्लाया|

बिटिया के द्वारा कमरा खोलते ही लीलाधर के छोटे बेटे ने संदूक लाकर पिता के पास रख दिया| लीलाधर ने अपनी जनेऊँ में लटकी चाबी से संदूक को खोलकर सबके सामने कर दिया| सबकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं| सभी का ध्यान आभूषणों पर था, लेकिन करीने से एक तरफ रखी गयीं शादी की चुनरी, उनके द्वारा खरीदी पहली साड़ी और भी कपड़ों पर उन सबका ध्यान ही नहीं गया था| दूसरी तरफ उसमें छोटे-बड़े डिब्बों की भरमार थी| सभी डिब्बों में बड़े करीने से लाल कागज में लपेटे हुए गहनें रखे हुए थे| कुछ पारदर्शी डिब्बों से दमकते सोने के गहनों से सबकी आँखें चौधियाँ गयी थीं| बक्से में बड़ी बहू के सोच से कहीं अधिक जेवर पड़े थे|

बेटी आश्चर्य मिश्रित गर्व से बोली, “बाबा रे! इस महँगाई में भी, माँ के पास इतना अधिक गहना रखा हुआ था! फिर भी माँ ने कभी भी अपने गहनों का जिक्र हम में से किसी से भी नहीं किया! गलत कहते हैं लोग कि स्त्रियों के पेट में कोई बात नहीं पचती| कहने वाले लोग मेरी माँ जैसी स्त्रियों से कभी मिले ही नहीं होंगे!”

“और अधिक था| तुम बच्चों की शादियों में तुम लोगों को जो आभूषण दिए गये, वे सब भी उसी के ही तो थे| और तब कहाँ था इतना महँगा सोना| उस जमाने में दो-ढाई-सौ रुपये तोला बिकता था सोना|” पिता ने उसके आश्चर्य से भरे चेहरे को देख हँसकर जवाब दिया|

“आजकल तो इतने रुपये में एक नाक की कील भी आ जाए तो बड़ी बात है| तीन-चार सौ रूपये तो हॉलमार्क नाम से ही सुनार ऐंठ लेते हैं|” मझली बहू ने तंज कसा|

“बेटा, आजकल खूब आमदनी भी तो है| तब के जमाने में मुझे महज दो-सौ तनख्वाह मिलती थी| आज उस नौकरी की शुरुआती तनख्वाह पच्चीस से तीस हजार रुपए है| और फिर आजकल मियाँ-बीवी दोनों प्राणी भी तो कमा रहे हैं|”

“निखिल का मोबाइल बजने लगा था, वह वहाँ से उठकर अंदर कमरे में चला गया|”

“भाभी का फोन आया होगा” सुमित फुसफुसाया| सारे बच्चे खिलखिला पड़े|

“मम्मी जी ने इतना सारा रुपया कैसे जुटाया होगा? जो नख से शिख तक गहना बनवाकर रख लिया उन्होंने|” आश्चर्य से गहनों की ओर देखती हुई छोटी बहू ने कहा|

“आजकल दो कमाने वाले और खाने वाले भी महज तीन-या चार प्राणी| फिर भी खर्चा पूरा नहीं पड़ता है| जबकि पहले जमाने में लोग आठ-दस जनों का अपना परिवार तो पालते ही थे, भाई भतीजों के परिवार की भी जरूरतें पूरी किया करते थे|” बड़े बेटे ने अपनी पत्नी की ओर देखकर धीरे से कहा|

“मेरी असावधानी से! और कोई एक दिन में थोड़ी बनवाई थी| राई-राई जोड़कर यह पर्वत खड़ा की थी वह अपनी कंजूस से| आजकल की तरह न वह शान-शौकत पर खर्च करती थी न ही पहनावे पर| दिखावे से वह कोसों दूर थी|”

“हा, हा| पापा, आप लापरवाह व्यक्ति थे! हर छोटी-से-छोटी चीज को तो इतना सँभालकर रखते हैं| भला आप लापरवाह कैसे हो सकते हैं पापा? मैं यह तो नहीं मान सकती हूँ| हाँ, यह मान सकती हूँ कि माँ ने अवश्य ही बहुत-सा कष्ट सहकर यह धन इकठ्ठा किया होगा|” बिटिया ने चहक कर कहा और धीरे से पिता के अंतर्मन में बसी माँ की यादों को कुरेद भी आई थी|

“अरे मतलब लापरवाह था नहीं, दिखाता था उसे| मेरे कपड़े जब वो धुलने को डालती थी तो पैंट-शर्ट की जेब जरूर चेक करती थी| जब रुपया हाथ लग जाता था तो उसका मुखड़ा चाँद-सा दमक उठता था|” दिमाग की सतह पर आ गए वाकये को बताकर लीलाधर आनंद से भर गए|

“हाँ याद आया| माँ ने बताया था कि तेरे पापा जेब में रूपये रखकर भूल जाते थे| मैं जब उनके साथ रहने आई तब उनकी गृहस्थी बसी| वर्ना नौकरों के मत्थे तो तेरे पापा सारी गृहस्थी लुटवा चुके होते| नौकर-धोबी जेब में मिले रूपये तेरे पापा को लौटाते थोड़ी थे|” बड़े बेटे ने माँ की तस्वीर की ओर श्रद्धा पूर्वक देखकर कहा|

लीलाधर बोले- "जब गाँव से बाहर रहने के लिए पहली बार मेरे पास आई थी, उस समय का किस्सा भी बड़ा अजब-गजब का है| ट्रक से सामान उतर रहा था| वह निगरानी करने के लिए गेट के पास ही आँगन में रखी कुर्सी पर बैठ गई थी| उसको साहबों की तरह कुर्सी पर बैठा देखकर मैंने बोल दिया, 'अरे! मैडम को कुर्सी पर बैठने का भी सऊर है!' सुनकर भड़क गयी थी तेरी माँ| पूरा घर उसने सिर पर उठा लिया था उस दिन|”

“हा, हा, मेरी माँ बड़ी स्वाभिमानी महिला थी न पापा!” श्रुति ने खिलखिलाकर गर्वान्वित स्वर में कहा|

“कहने लगी, जमींदार की बिटिया हूँ| आप क्या ऐसे ऐरा-गैरा समझ रखे हो क्या| माना ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, वह तो इसलिए कि गाँव में स्कूल नहीं था| वरना...!” कहते हुए लीलाधर ने चुप्पी साध ली|

“वरना क्या..! चुप क्यों हो गए दादा जी! बताइए न.. वरना के आगे दादी ने क्या कहकर धमकाया था आपको?” रोहन ने

मुस्कराकर प्रश्न का पुष्प-तीर छोड़ दिया था| बेटे-बहुओं की तो पूछने की हिम्मत ही नहीं पड़ी थी|

“अरे मत पूछो बच्चों! वह तो ऐसा भड़की थी मुझ पर! ऐसा भड़की थी कि मजदूर भी मुझसे अपनी नजरें चुराते हुए मुझपर हँस रहे थे| जब मैं उन्हें घूरता तो वे दूसरे कामों में लगने का बहाना कर लेते थे|” मंथर गति से हँसकर उन्होंने सब बच्चों को सम्बोधित करके बताया|

“वरना के बाद का किस्सा बताइए पापा| माँ ने आपको क्या कहकर अपना रौब गाँठा था|” बेटी ने पिता की यादों के भँवर में हिम्मत करके एक कंकड़ उछाल दिया|

“अरे! धौंस दी थी कि ‘पढ़ती तो मैं भी कहीं कोई अफसर होती| फिर आपसे शादी थोड़ी करती मैं|”

सुनकर बड़ी जोर की हँसी का दौर एक कोने से चलता हुआ दूसरे कोने तक पहुँचकर पूरे कमरे को ही ठहाकों से भर गया था| बहुएँ भी मुँह दबाए हँसती हुई, अपनी ठहाके भरी हँसी को बाहर आने से बरबस रोकने की कोशिश कर रही थीं| जैसे गैस पर उफनते हुए दूध को रोकने का प्रयास किया करती थीं| क्या मजाल की उनके ठहाके उनके मुख रूपी जेल को तोड़कर बाहर आ सकें और ससुर के कान के परदे को ठकठका सकें| लेकिन बेटे आपसी मतभेद भुलाकर एक दूसरे की पीठ पर धौल जमाते हुए खूब हँसे|

लीलाधर ने घर की दीवारों की ओर नजर दौड़ाई| आज यकायक दीवारें फिर से खिलखिला पड़ी थीं| दीवार के बीचों-बीच लगी सुधा की फोटो लीलाधर से जैसे कह रही थी ‘हटो तुम भी न! गहनों के साथ-साथ तुमने तो मेरे सारे राज से पर्दा हटा दिया| ये सब कहने की क्या जरूरत थी| बहुएँ मेरे बारे में क्या सोच रही होंगी! आँय...!' लीलाधर ने जैसे उनकी शिकायत को सुन लिया हो और सबके साथ वह भी पत्नी की तस्वीर की ओर देखकर हँसने लगे|

“सो टचिंग!” दादा जी को दादी की तस्वीर की ओर देखकर हँसते देखा तो रोहन बोल पड़ा|

“दादा जी, आप दादीजी से बहुत ज्यादा प्यार करते थे?” बेटी की बिटिया आस्था ने मासूमियत से नाना जी के चेहरे पर अपनी नजरें जमाते हुए सवाल किया| श्रुति ने सवाल सुनते ही आस्था को आँखें दिखाईं| किंतु प्रश्न तो हो चुका था और लीलाधर स्मित मुस्कान के साथ उत्तर देने को उद्धत थे| वह प्रश्न सुनते ही बेझिझक अफसोस जताते हुए कह रहे थे,

“हाँ बेटा, बहुत ज्यादा प्यार करता था| पर आजकल की तरह कह नहीं पाया उससे कभी| न ही कभी कोई उपहार ही देकर जाहिर कर पाया था अपना प्यार| आज से चालीस साल पहले तक यह आजकल का वाचाल प्यार भी अबोला रहता था| पहले बिन बोले, बिन गिफ्ट-शिफ्ट

के ही प्यार की भाषा एक दूसरे के हाव-भाव से ही उसके चहेरे पर पढ़ जो ली जाती थीं; अतः कहने की आवश्यकता पड़ती ही नहीं थी कभी भी|”

“तो आपने भी पढ़ा था दादी जी का चेहरा?” सुमित चहका था|

“हाँ बेटा, पढ़ा था| प्यार ही तो था उसका, तभी तो वह न जल्दी मायके जाने की जिद करती, न ही मेरे किसी काम को करने में उफ करती थी| भले चाहे खुद बीमार हो! या फिर कितना भी घर के कामों से थकी हुई हो| यहाँ तक कि मेरे पाँव बिन दबाए वह कभी नहीं सोयी|” याद के भँवर में फँसे उनके नयन अश्रु में डूब गये| थोड़ी देर के लिए कमरे में सन्नाटा पसर गया| लीलाधर के नयन कटोरे तो छलके ही थे, साथ में उनकी बेटी और पोते-पोतियों के भी नयन सजल हो उठे थे|

“मम्मी मैं सोने जा रहा हूँ, नींद आ रही है|” सुमित कहकर वहाँ से चला गया| दूध देने के बहाने से मझली बहू उठकर रसोई में जाने लगी, इशारा समझ उसका पति भी बहाने से उठा और रसोई की ओर चला गया| रसोई में पहुँचकर बहू ने अपने पति से कहा “बात गहनों की हो रही थी| लेकिन पापा जी दुनिया-जहान भर की बातें करते जा रहे हैं, बात नहीं कर रहे हैं तो गहनों की! जिसकी बातें उन्हें करनी चाहिए थी| तुम कहो न कि जल्दी से गहनें-सहने दिखाएँ| थकान लगी है, सोना भी तो है|”

आँखों ही आँखों में उसके पति ने उसे आश्वस्त किया| फिर पिता के पास आकर बोला, “पापा, गहनों के डिब्बें खोलिए| लाइएँ, मैं ही खोलता हूँ|” कहकर एक बड़ा-सा डिब्बा उठाकर अपने हाथ में ले लिया| उसमें रखा एक छोटा-सा डिब्बा उसने खोला| तो साँप-सी कुंडली मारे मोटी-सी जंजीर पड़ी हुई दिखी| जिसको देखकर बहुओं की आँखें तो नागिन डांस करने लगी थीं|

“इतनी मोटी जंजीर और इसकी इतनी सुंदर डिजाइन?” मझली बहू ने आँखें मटकाते हुए कहा|

“इसकी कहानी सुनेगी तो हँसते-हँसते लोटपोट हो जाएगी और थोड़ा दुख भी होगा|” कनखियों से उन्होंने सुधा की फोटो की ओर ऐसे देखा, जैसे धमका रहे हों कि बता दूँ बच्चों को!

“बताइए न पापा!” छोटी बहू बोली|

“इस जंजीर को उसने अपनी ननद यानी मेरी छोटी बहन को देने के लिए बनवाया था| दो अँगूठी, एक हार, पायल, कई नग गहनें उसने उसके लिए बनवाएँ थे| बड़ी खुश थी गाँव जाते समय| अपने लिए भी उसने एक पतली-सी दो तोले की जंजीर बनवाई थी| शादी के दो दिन पहले न जाने किस बात पर ननद और भौजाई में नोक-झोंक हो गई थी| सारे जेवर तो उसने जाते ही अपनी सास यानी मेरी माँ को, ननद को देने के लिए दे दिए थे| मगर यह जंजीर वह उसकी पाँव पुजाई में देने वाली थी| इसलिए यह उसके पास ही थी| पाँव पूजने के लिए जब वह आँगन में पहुँची, तो जो ननद-भौजाई के उस वाक-युद्ध से अनभिज्ञ थे, आपस में बोल रहे थे कि देखना सबसे ज्यादा भारी-भरकम चीज से पाँव पूजेगी लीलाधर की दुल्हन| पाँव पूजते समय उसने ननद की ओर देखा और पवपुजी करके, पर्स में से अपने लिए बनवाई गयी वही पतली-सी जंजीर उसे पहनाकर उठ गई| सब काना-फूसी करने लगे कि कुछ तो बात है, ‘देनदार बहुरिया ने बिटिया की पवपुजी में हल्का-सा गहना दिया’ जरुर कोई राज छुपा है इसमें| ‘क्या किसी से लड़ाई-झगड़ा हुआ है घर में’ किसी ने शंका भी जाहिर कर दी थी| परन्तु घर के किसी सदस्य ने मुँह नहीं खोला कि आखिर हुआ क्या था दोनों के बीच! क्यों शहरी बहुरिया ने अपनी ननद को हल्का-सा जेवर देकर सिर्फ रस्म अदाएगी की| बाद में भी कभी उसने उसके लिए कुछ भी नहीं बनवाया और न उसे अपने पास शहर में बुलाया|”

“अच्छा...! तभी बुआ भी कभी नहीं आती हैं इधर| यहाँ तक कि माँ के मरने पर भी आकर उसी दिन वापस चली गई थीं| दोनों जन की लेन-देन को लेकर मौन-युद्ध चला आ रहा था|” छोटी बहू ने दुखी मन से कहा|

बेटी भाभी की ओर तिरछी निगाह डालते हुए बोली, “मेरी माँ बड़ी दबंग थी| जरुर बुआ ने माँ को कुछ ऐसा-वैसा कहा होगा जिसको वह बर्दाश्त नहीं कर पायी होंगी| ”

बहू के बजाय पिता ने ही बेटी को जवाब दिया, “हाँ, बहुत दबंग थी तेरी माँ! एक बार मेरी माँ ने उससे कह दिया था कि ले जाने को चावल नहीं है| मिलता तो शहर में भी है, खरीदकर खाओ| वह क्रोध में उन्हें सुना दी और कुठिला में भरा चावल देखकर उसका मुँह खोल दी| सारा चावल भरभरा करके बाहर आ गया| तो वह अम्मा से बोली, ‘अम्मा चावल नहीं है घर में तो फिर ये क्या है, कंकड़! इनकी आमदनी का बड़ा हिस्सा आपको भेज देती हूँ, क्या इस दिन के लिए|’ उस बार जब लौटी तो सरकारी क्वाटर के अगल-बगल पड़ी खाली जमीन में खेती करवाना शुरू कर दिया था उसने| उसकी एक आवाज पर मजदूर एक पाँव पर खड़े हो जाते थे| उसकी ही हिम्मत थी कि वह घर की देखभाल, बच्चों को पालने के साथ-साथ खेती भी करवा लेती थी| गाय भी पाल रखी थी उसने तो| दूध-दही सब घर में ही होता था| सब की अच्छे-से देखभाल करती थी वह| क्या मजाल कि मजदूर-चौकीदार-नौकर उसके सामने चूँ भी कर दें| खेती और जेब से निकाले हुए रुपये दोनों उसके अपने होते थे| उसे वह घर के खर्च में नहीं लेती थी| वह समझती थी कि इस बात का मुझे पता ही नहीं है कि वह मेरी चोरी से रुपया-पैसा छुपाकर रखती है| मुझे तो पता रहता था, पर उसकी खुशी के लिए मैं अनजान बना रहता था|”

“अच्छा! तो उन्हीं रुपयों से माँ गहनें बनवा लेती थीं?”

“हाँ, घर खर्च के बचे पैसे भी तो उसी के होते थे| जब-तब खर्चे के लिए मुझसे रुपये लेती थी और उसमें से कुछ न कुछ बचाकर रखती रहती थी| पूछने पर बड़ी मासूमियत से कह देती कि खर्च हो गए सारे|”

छोटा बेटा धीरे से बोला, “माँ, पापा को उल्लू बना लेती थीं|” सभी हँस पड़े थे यह सुनकर|

“अच्छा पापा अब रात बहुत हो गयी है| आप अब चलकर सोइए वरना तबियत बिगड़ जाएगी|” मझले बेटे ने खुद उठते हुए सबको इशारा करके उठने के लिए कहा|

“मगर अभी ही तो कहानी इंट्रेस्टिंग होने लगी थी|” मझले बेटे की बेटी अनु अनमनी होकर खड़ी हो गयी थी|

“बदमाश कहीं की, सब सोओ चलकर| रात के ग्यारह बज गये हैं| सुबह उठना भी है|” बड़ी बहू ने उसको चपत लगाते हुए कहा| फिर झट से लीलाधर की छड़ी उन्हें पकड़ा दी, सुधियों की पेटी की ओर देखते हुए वह भी छड़ी के सहारे धीरे-धीरे उठ रहे थे कि निखिल आगे बढ़कर उन्हें सहारा देकर, उनके कमरे में ले जाने लगा|

सब अपने-अपने बिस्तर पर जा चुके थे| अभी तलक जहाँ यादों की बारात सजी थी वहीं पर दस मिनट में ही शांति पसर गयी|

“भैया जल्दी निकलो!” बाथरूम के दरवाजे पर खड़ी अनु चिल्ला रही थी| लीलाधर आँगन में बैठे ‘आस्था निकलो, पानी खत्म हो गया, मम्मी चाय चाहिए, मम्मी मुझे नाश्ता में आलू का पराठा ही चाहिए’ आदि-इत्यादि तरह-तरह के वाक्यों के साथ हो-हल्ला कर सबकी घुड़दौड़ सुबह से देख-सुन रहे थे|

“तुम लोगों को कहा था न जल्दी उठो, लेकिन मेरी सुनता कौन है| अब भुगतो...!” मझली बहू अपने बच्चों के चिल्लपों पर झल्लाई| सुबह से

भागम-भाग में कब दस बज गए, पता ही नहीं चला| किसी ने कल रात की कहानी को आगे सुनने की इच्छा प्रगट की तो बड़ी बहू बोली, अभी नहीं| दोपहर का भोजन हो जाने के बाद| अभी पिताजी भगवद्-गीता पढ़ रहे होंगे और हम लोग भी अभी खाली नहीं हैं|"

"वैसे दीदी, एक बात कहूँ! अम्मा जी गहनों की शौकीन भले नहीं थीं परन्तु उनकी पसंद बेहद अच्छी थी| लगता है जैसे गहनें बीते जमाने के नहीं बल्कि आधुनिक समय के ही हैं|"

"ये तो तुमने सच ही कहा है मझली| भारी भी इतने कि पहनकर मन खुश हो जाए|"

छोटी भी कुछ कहने से कहा चूकने वाली थी, उसने उनके गपशप के मसाले में मिर्ची झोंक दी, "मुझे पता होता कि इतने भारी और खूबसूरत गहनें सासू माँ ने इस कोठरी में छोड़ रखे हैं, तो मैं तो शादी-ब्याह में जाते समय पिताजी से माँगकर जलवा बिखेर ही आती|" दोनों बहुएँ मुँह बिचकाकर वहाँ से परे हट गयीं| बगल से गुजरती हुई बिटिया ने सुना तो बोली, "सपने देखने में क्या जाता है भाभी, देखो-देखो मुंगेरी लाल के हसीन सपने|"

बेटों को गहनों को देखने का चाव हो न हो, लेकिन बहुएँ उन गहनों को पास से देखने और हाथ में लेकर उसका वजन करते हुए, उसे परखने को वे मरी जा रही थीं| दोपहर को खाना-पीना फटाफट खत्म करके फिर से सब इकट्ठे हो गये थे| ड्राइंग रूम में लीलाधर के आते ही सुमित बोला, "दादा जी बक्सा कोठरी के भीतर बंद किए बगैर आपको नींद कैसी आई?"

"मैं तो चैन से सोया| अपनी ताई-मम्मी से पूछो कि उन्हें नींद आई या नहीं| वे सब कहीं अब भी उन गहनों को झपटने के चक्कर में तो नहीं पड़ी हैं|"

"अरे नहीं पिताजी, आपने एक बार कह दिया तो हम क्यों मम्मी जी की ज्वैलरी जबरदस्ती चाहेंगे भला| आप यदि देना चाहते तो खरीदना न पड़ता,

बस यही सोचकर उस समय कह दिया था| किंतु आप नहीं चाहते तो नहीं सही|" भोलेपन का नकाब बड़ी चालबाजी से ओढ़कर बड़ी बहू जमीन में बिछे गद्दे पर बैठ गयी थी|

"वैसे पापा, मम्मी साल भर में कितना रुपया बचा लिया करती थी?"

'यह बता पाना तो सम्भव नहीं है बेटा| वैसे यह सवाल कभी अपनी दुल्हन से पूछा तुमने! क्यों बड़ी बहू, साल में कितना बचा लेती हो?"

"पापा जी, बस थोड़ा-बहुत...| महँगाई में ज्यादा सम्भव हो ही नहीं पाता|"

"सुधा तो खूब बचा लेती थी, लेकिन उस बचत के लिए वह खूब मेहनत करती थी| तुम बहुओं ने उससे यह गुण नहीं सीखा| गहनें बनवाना हो या मुझसे छुपाकर रिश्तेदारी में लेनदेन की बात होती, वह अपने उसी बचत खाते वाले रुपये से निपटा लिया करती थी| जहाँ मैं मना कर देता कि वहाँ कोई उपहार नहीं देना है, वह अपने बचत का गुल्लक वहाँ पर इस्तेमाल कर लेती थी| जब कभी उसकी इस आदत पर मैं उसपर चिल्ला पड़ता तो बड़ी शन्ति से जवाब देते हुए कहती, 'आपको क्या! इसी न्योते-हकारी के देन-लेन से समाज में इज्जत बनानी पड़ती है| नहीं दूँगी तो दस तरह की बातें उठेंगी| उन बातों का उत्तर मुझ ही को तो देना पड़ेगा| आप थोड़ी हर वक्त मेरे साथ खड़े होंगे नाते-रिश्तेदारी की महिलाओं को उत्तर देने के लिए'|"

"न्योता यानी शगुन!" बेटी ने पूछा| "हाँ!" पिता ने अति संक्षेप में उत्तर दिया|

"मम्मी ने मुझसे सारा कुछ लिखवाया है| किसको क्या दिया, किस अवसर पर दिया, सब कुछ|" बड़े भैया ने डायरी का जिक्र करते हुए

बताया|

“अच्छा...! कहाँ है वह डायरी?" पिता ने उत्सुकता से पूछा| बेटे ने अपनी पत्नी को डायरी ले आने का इशारा किया| उसकी पत्नी तुरंत उठकर बायीं ओर बने कमरे में चली गयी|

“वह अपनी समझ के अनुसार उस रिश्ते को कैसे निभाना है, कितना देना चाहिए कि रिश्ता बना रहे, रिश्ते का प्यार कायम रहे, सोच-समझकर खुद ही फैसला ले लेती थी| मुझे कभी इसकी जानकारी ही नहीं दी और न ही कभी मुझे जरूरत महसूस हुई कि मैं उसके मामलों में हस्तक्षेप करूँ|”

“यानी माँ ने शगुन में देने के लिए भी अँगूठियाँ-पायल वगैरह बनवाएँ होंगे?” छोटे बेटे ने पूछा|

“हाँ, रिश्ते को सँभालने की जिम्मेदारी भी तो उसकी थी| अपनी इज्जत, ओहदे और उस रिश्तेदार के सम्मान के हिसाब से देती-लेती रहती थी वह| वैसे वह मुझे भी समझा गयी है कि जो बहू रिश्तों की कीमत समझे, उसे देने में कंजूसी नहीं करना|” कहते ही लीलाधर कनखियों से तीनों बहुओं के चेहरों के हाव-भाव परख आए थे|

“बजट मैनेजमेंट की पूरी जानकार थी मेरी माँ|” श्रुति ने लीलाधर के द्वारा कहे गए अंतिम वाक्य पर ध्यान नहीं दिया, परन्तु बहुओं के चेहरों की मुस्कान जैसे चील झपट ले गयी हो|

“हाँ, पक्की| जब भी कोई गहना बनवाती थी तो मुझसे छुपाना चाहती थी| पर कोई चीज घर में छुपी रहती है क्या भला| मेरी नजर उसके बनवाएँ हुए गहनों पर पड़ ही जाती थी| पूछने पर बड़ी मासूम बन जाती थी वह, बिल्कुल एक नन्हें शरारती बच्चे की तरह|” कहकर पिता मुस्कराने लगे|

“पापा, पानी लीजिए| खाने के एक घंटे बाद आप पानी पीते हैं न|” छोटी बहू ने कहा तो लीलाधर मंद-मंद मुस्काए बिना न रह सके|

“इतनी आकर्षक डिजाइन की मुँदरी!” हाथ में अँगूठी लेकर मझली बहू बोली थी|

“पापा, यह तो बड़ी भारी अँगूठी है!” बड़ी बहू ने उसके हाथ से लेकर अपनी हथेलियों पर उछालते हुए पूछा| लीलाधर ने पानी पीते-पीते ही उस ओर देखा, घूँट गटककर कहा, “हाँ, तोला भर तो होगी ही|”

“तोला क्या होता है नाना जी?” आस्था ने जिज्ञासा व्यक्त की|

“तोला मतलब बारह ग्राम सोना| पहले जमाने में सोने की तौल तोला, रत्ती, आना, माशा में हुआ करती थी|”

“घोर आश्चर्य!” रोहन ने गहनों को छोड़कर सबका ध्यान माप पर लाना चाहा| मगर लीलाधर के आलावा किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया| वह धान, खसखस, गुंजा बीज से कैसे सोने को तौला जाता था, पूरा विवरण सहित समझाना चाहते थे कि तभी सुमित ने कल्कुलेट करके थोड़ा तेज स्वर में बोलकर तारतम्य को तोड़ दिया, “मतलब आज यह अँगूठी चालीस हजार से कम की नहीं होगी|”

“और तब रही होगी ढाई-तीन सौ की|” लीलाधर ने सहज होकर बताया|

“अरे वाह! सुनने में लग रहा है, कितना सस्ता था तब सोना| लेकिन आप कह चुके है कि पहले जमाने में तनख्वाह भी बहुत कम हुआ करती थी| उस हिसाब से तब यह भी बहुत महँगा था, जैसे आज हम लोगों को सोना महँगा समझ आ रहा है|” छोटी बहू ने अंदाज बैठाते हुए कहा|

“जब उसके पास खूब ढेर सारा रुपया इकट्ठा हो जाता था तो उस समय वह बात-बात पर मायके जाने को कहने लगती थी| उसके कहने भर से ही मैं समझ जाता कि इसके पास रुपये इकट्ठे हो गए हैं| उस समय मेरा बहराइच में नया-नया ट्रांसफर हुआ था| किसी पड़ोसी से अभी उसका

मेल मिलाप नहीं हुआ था| यही कारण था कि मायके जाने की जिद पकड़ ली थी उसने| मैंने हँसकर पूछा भी था कि ‘कितना इकट्ठा हो गया! मुझे ही दें दे, मैं तेरे थैले को पड़ोसी से ज्यादा सम्भालकर रखूँगा’| सुनते ही तुनक गई थी वह ‘क्या-कितना इकट्ठा हो गया है| सालों हो गए, गई नहीं घर| अम्मा-बाबा की याद नहीं आ सकती है क्या! मेरा मन भी तो अपने माता-पिता से मिलने के लिए हुलसता है न’?”

“तो माँ को, आपने उनके मायके भेजा था?”

“भेजा क्या! मैं खुद उसे उसके मायके छोड़कर आया था|”

“आप! आप तो कहते हैं कि आप कभी ससुराल गए ही नहीं! भैया को तंज कसते रहते हैं कि आजकल के लड़के विवाह हुआ नहीं कि ससुराल की दहलीज पर धरना देने पहुँच जाते हैं|” आश्चर्य भरी आवाज में बेटी ने पूछा था| भाभी ननद की बात सुनकर कनखियों से भैया को देखकर मुस्करा रही थीं|

“अरे! घर तक नहीं गया था| उसे गाँव के मुहाने पर ही छोड़कर आ गया था| अपने घर का रास्ता तो उसे पता ही था| जब तक वह मेरी नजरों से ओझल नहीं हुई थी, वहीं खड़ा देखता रहा था उसे| भटक न जाए कहीं! कहीं कोई अनहोनी न हो जाए! आखिर यह तो मुझे पता ही था कि उसके पास रुपयों से भरा थैला है| और ढेरों जेवर भी, जो उसने पहन रखे थे|”

“माँ अपने मायके इतने ज्यादा गहनें पहनकर क्यों जाती थी पापा, क्या उस दौर में उसे गहनों का बहुत ज्यादा शौक था?” बेटी ने आश्चर्य करते हुए पूछा|

“अरे नहीं| तेरी माँ घर में कोई गहना पहने-न-पहने पर मायके सजधज के ही जाती थी| जब मैं टोकता तो कहती ‘मेरे पति की इज्जत का सवाल है’|” हँसते हुए सिर नीचे करके बोले थे लीलाधर, “मूरख थी तेरी माँ|”

"मुँह से भले कह रहे हैं आप! पर आपका दिल तो कह रहा है कि तुम्हारी माँ मेरी इज्जत के लिए अपनी जान भी जोखिम में डाल देने को तत्पर रहती थी|" श्रुति ने रुंधे स्वर में कहा तो लीलाधर के साथ उनके बेटे भी भावुक हो गये|

लीलाधर एक-एक आभूषण को उठाकर उसके पीछे की कहानी बताते जा रहे थे| बीच-बीच में बिटिया गहनों को आश्चर्य से देखते हुए भाभियों को भी दिखाती जा रही थी| सबके हाथों से होता हुआ गहना अपने केस में फिर से सज जाता था|

कंगन का सेट उठाकर पापा हँसते हुए बोले, "तुम्हारी माँ ने मुझसे छुपाकर इन कंगनों को पड़ोसी के साथ जाकर बनवाया था|"

"आप से चोरी! पर इतना रुपया कहाँ से आया था?" बड़े बेटे ने कंगन हाथ में लेकर देखते हुए पूछा|

"ये कंगन जब बनवाई थी, उस समय हजार-बारह सौ रूपये तोला सोना था| रुपये इकट्ठे करके पड़ोस में भाभी जी के यहाँ रखती जाती थी| फिर उन्हीं के साथ जाकर कंगन बनवा लाई थी| बहुत छुपाई थी मुझसे| लेकिन छुपा नहीं पाई थी ज्यादा दिन| उसके भाई की शादी में मैंने उसे इन कंगनों को पहने देखा तो मुस्कराकर रह गया था|"

"आज के जमाने में पड़ोसी पर भरोसा करके उनके यहाँ रूपये छुपाना तो बहुत अधिक रिस्की काम है|" चुपचाप सबकुछ देखने-सुनने वाला निखिल अचानक बोला था|

"तब के जमाने में चीजों की कीमत भले कम हुआ करती थीं परन्तु लोगों के ईमान की कीमत बेहद अधिक थी बेटा|" लीलाधर ने अपनी निगाहें सबके चेहरों पर से गुजारते हुए कहा|

“मेरी शादी में भी माँ ने ये कंगन पहन रखे थे, पर बाद में मैंने उन्हें इनको पहने कभी नहीं देखा|”

“हाँ, किसी की शादी में एक मुँदरी उसकी उँगली से गिरकर खो गयी थी, तबसे वह गायब होने के डर से गहनें पहनना ही छोड़ दी थी| बहुत कहता तो एक जंजीर और दो अँगूठियाँ डाल लेती थी|”

“पापा थक गए हों तो आराम कर लीजिए| रात के भोजन के बाद देखेंगे|” बड़ी बहू ने माया का जाल फेंक दिया था|

तभी श्रुति की नजर बड़े-से झुमके पर गई| “पापा, मम्मी इतना बड़ा झुमका पहनती थीं क्या?” आश्चर्य से झुमके को हथेलियों के बीच लेकर पूछा तो बड़ी बहू के डाले गए जाल से बाहर छिटककर लीलाधर झुमका उठाकर उलट-पुलटकर देखने लगे|

“पहनती होंती तो उनके कान के छेद बड़े होकर कान की ललरी लटक जातीं, जैसे मेरी माँ के कान की ललरियाँ हो गयी हैं| वह तो एक बार डॉक्टर के पास जाकर कान की ललरी सिलवा भी आयी थीं| माँ के कान के छेद तो बिलकुल ठीक थे| वैसे भी उन्हें हम लोगों ने तीन-चार ग्राम से ज्यादा भार का टॉप्स पहने हुए कभी देखा ही नहीं था| क्यों दीदी, मैं ठीक कह रही हूँ न?” मझली बहू उदाहरण के साथ हाजिर थी|

“आँ…, हाँ, ठीक कह रही हो|” बड़ी बहू उसकी चापलूसी से खुन्नस खाई थी, मगर न चाहते हुए भी उसे बोलना पड़ा|

“बड़ा-सा झुमका? वैसे ये सोने का तो नहीं लग रहा है| तुम्हारी माँ नकली चीज तो पहनती ही नहीं थी| फिर यह कैसे इस बॉक्स में है| वह भी सोने के गहनों के बीच में रखा है!” लीलाधर बहू की बातों पर ध्यान न देकर झुमके को देर तक देखते हुए बहुत सोचकर बोले थे|

“इसके पीलेपन की चमक तो सोने जैसी ही लग रही है, पापा|” छोटी बहू ने कहा था|

“कभी उसे पहने हुए तो मैंने नहीं देखा| और वह इतल-पीतल खरीदती नहीं थी कभी|”

“पापा, हो सकता है मामा के यहाँ जाकर माँ ने बनवाया हो| गाँव का सोना अलग-सा ही दिखता है| शायद यह वहाँ का बनवाया हुआ ही झुमका हो|” बड़ी बहू ने झुमके को परखकर कहा|

तभी बगल में बैठे मझले भाई ने कहा, “पापा, लाइए सुनार को दिखा दूँगा|” कहकर एक झुमका अपने हाथ में ले लिया|

बड़े भाई की नजर पापा के हाथ में लिए झुमके पर गई तो वह बोला, “हाँ पापा लाइए इसे, कल जा रहा हूँ सुनार के यहाँ, मैं ही दिखा लाऊँगा|”

दोनों भाइयों के हाथ में झुमके का जोड़ा अलग-अलग होकर अपनी चमक खो चुका था| दोनों बेटों की नजरों को भापने में पिता को तनिक भी देर नहीं लगी| श्रुति के हाथ में सारे गहनें देते हुए पिता ने झट से कहा- “श्रुति बिटिया बंद कर दे माँ की अमानत, वरना बिखर जाएगी|”

“पापा, माँ की ये अमानत बंद करके क्यों रखना| सारे गहनें भाई-भाभियों में बाँट दीजिए|” सुनकर भाई-भाभियों के मन में लड्डू फूट पड़ा|

“नहीं बिटिया, अभी नहीं| तुम्हारी माँ की यादों से इन्हीं सब चीजों के सहारे तो मैं बँधा हुआ हूँ| हर एक गहना, तुम्हारी माँ की एक-एक पल की कहानी कहता है| मुझसे बात करते हैं ये सारे गहनें भी| मुझसे कुछ-न कुछ कहते रहते हैं| मैं कुछ कहता हूँ, तो मेरी बात ये सुनते भी हैं| शायद इनके माध्यम से वह भी सुनती होगी| ये सारे आभूषण तो दूँगा इन्हीं लोगों को, परन्तु अभी नहीं| तुम्हारी माँ की इस अमानत पर अभी सिर्फ मेरा

अधिकार है| जिस दिन तुम्हारे पास भी बँटवारे की खबर पहुँचे, समझ लेना तुम्हारे पिता के पास कुछ ही दिन शेष बचे हैं| तुम्हारी माँ की अमानत में आखिर तुम्हारा भी तो कुछ हिस्सा है| और इन गहनों में बसी उसकी उन यादों को अपने पास रखने का अधिकार भी तुम्हें है|” कहते-कहते अचानक लीलाधर बहुत ज्यादा भावुक हो उठे| अनायास ही उनकी सूनी आँखों से चार बूँद आँसू ढुलक गए|

श्रुति की आँखें भी बरसने लगी थीं| “पापा, आई लव यू|” कहकर वह उनके गले से लिपट गयी|

सहसा दीवार पर टँगी तस्वीर की आँखें भी पनीली हो उठी थीं| लीलाधर ने तस्वीर की ओर देखा फिर कुछ सोचकर उन्होंने संदूक से पाँच अँगूठियाँ और पाँच पायल निकाल लिया और तीनों बहुओं में एक-एक बाँट दिया| बहुओं के चेहरे सूरजमुखी से खिल उठे| फिर बेटी को अपने पास बुलाकर उसके हाथ में भी एक अँगूठी और पायल रखकर उसकी मुट्ठी को बंद कर दिया| बहुओं की निगाहें तिरछी हुई परन्तु वे कुछ बोल नहीं पायीं|

“एक मुँदरी और पायल आने वाली तुम्हारी बहू के लिए|” बड़ी बहू के हवाले करके उन्होंने राहत की लम्बी साँस खींची| लगा जैसे इस समय की अपनी जिम्मेदारी से वह मुक्त हुए|

“बाकी बाद में दूँगा तुम सबको|” पिता जी के मुख से आश्वासन भरे मधुर शब्द सुनकर बहुओं के हृदय में बरसात शुरू हो गयी| उन सबके चेहरे पर उस बरसात के परिणाम स्वरूप बुलबुले रह-रहकर बन-फूट रहे थे, सबकी मुस्कान देखकर जिसे अनुभवी लीलाधर ने भाँप लिया था|

अपनी पत्नी सुधा की तस्वीर की ओर रुख करके लीलाधर ने कहा, “अब तो तू खुश है न! चिंता न कर, सब तेरे मन का ही करूँगा| तेरी इस अमानत का हिस्सा मैं सबको बराबर-बराबर सौपूँगा| मगर अपने जीते-जी तेरी

सुधियों से हुआ अपना यह अनुबंध थोड़ी तोड़ दूँगा मैं|" स्निग्ध मुस्कान लिए उन्होंने संदूक बंद करके उसमें ताला लगा दिया|

--०--